जागोरी की द्विमासिक पत्रिका

जुलाई–अगस्त 2008

हम सबला

इस अंक में
सम्पूर्ण स्वास्थ्य
से सशक्तता

स्वस्थ महिला- सशक्त समाज

हम सबला

जुलाई-अगस्त 2008

संपादन एवं अनुवाद
जुही जैन

संपादन सहयोग
जया श्रीवास्तव
कल्याणी
खुर्शीद अनवर
सीमा श्रीवास्तव

मुख पृष्ठ एवं अन्य रेखा चित्र
प्रशांत ए.वी.

पेज सज्जा व मुद्रण
सिस्टम्स विज़न
दूरभाष 26811195
ई-मेल systemsvision@gmail.com

जागोरी
JAGORI

बी 114 शिवालिक, मालवीय नगर
नई दिल्ली 110 017
ई-मेल jagori@jagori.org
वेबसाइट www.jagori.org
दूरभाष 26691219, 26691220
हेल्पलाइन 26692700

इस अंक में

हमारी बात 1

लेख
- स्त्री जननांग विकृतिकरण — सुमन बिष्ट, सौम्या अग्रवाल, आंचल कपूर — 27
- संघर्ष के दौर में औरतों के अधिकार — जुही जैन — 30
- सामाजिक ढांचों के बीच महिला स्वास्थ्य — सुनीता ठाकुर — 32

आमने-सामने
- वह नाचती है ताकि दूसरे जी सकें — कल्पना देउसकर — 18
- स्तन कैंसरः कुछ महत्वपूर्ण जानकारी — 21
- तनाव — जुही जैन — 23

कहानी
- रिजक — मैत्रेयी पुष्पा — 9

कविता
- अपने ख़िलाफ़ — स्नेहमयी चौधरी — 17
- एक द्वार — स्नेहमयी चौधरी — 26
- मन्दिर — स्नेहमयी चौधरी — 36

संवाद
- क्या देशज दाई परम्परा मातृत्व सेवा प्रणाली को सशक्त कर सकती है? — मीरा सदगोपाल — 3
- बढ़ती कीमत, घटता पोषणः तालमेल कैसे? — वी. रुक्मिणि राव — 13
- आधुनिक उपकरण और हमारी सेहत — सीमा श्रीवास्तव — 25

अभियान
- दाई संगठन घोषणा-पत्र — 7
- बालिका भ्रूण हत्या — 40

पुस्तक समीक्षा
- बर्थिंग विद डिगनिटी — जुही जैन — 35

फ़िल्म समीक्षा
- 'फिर मिलेंगे'-जीवन संघर्ष की मिसाल — सुनीता ठाकुर — 37

नई जानकारी
- जागोरी फ़िल्मोत्सव : 'क्रोमोज़ोम'-जेंडर पर एक सूक्ष्म नज़र — 39

हमारी बात

आपने पिछले दिनों अखबारों और टीवी में मुंबई की निकिता मेहता के बारे में सुना होगा। निकिता मेहता इकतीस वर्ष की गर्भवती औरत है जिसने अपने पच्चीस हफ्ते के गर्भ को गिराने के लिए कोर्ट में अर्जी दाखिल की थी। भारत में बीस हफ़्ते से ऊपर के गर्भ को गिराने के लिए कानूनी रज़ामंदी लेनी ज़रूरी होती है। निकिता गर्भपात कराना चाहती थी क्योंकि डॉक्टरों की जांच-पड़ताल से पता चला था कि भ्रूण के हृदय का विकास ठीक से नहीं हो रहा है।

डॉक्टरों के अनुसार जन्म के बाद इस बच्चे को 'पेसमेकर' के सहारे अपना पूरा जीवन गुज़ारना पड़ता। इसके अलावा बच्चे को अन्य तकलीफ़ों का भी सामना करना पड़ता। आर्थिक व मानसिक रूप से मेहता दम्पति इस बड़ी ज़िम्मेदारी उठाने में सक्षम नहीं थे, लिहाज़ा उन्होंने गर्भपात की इजाज़त मांगी। कोर्ट का फैसला मेहता दम्पति के ख़िलाफ़ आया - उन्हें गर्भपात की इजाज़त नहीं दी गई। तनाव और मायूसी ने निकिता के स्वास्थ्य पर अपना असर दिखाया। निकिता का गर्भपात खुद-ब-खुद हो गया।

यहां हम इस बहस को एक तरफ रख दें कि अजन्मे गर्भ को गिराने का हक़ निकिता को था या नहीं। या फिर सामाजिक-कानूनी और नैतिक नज़रिए से औरतों के पास अपने शरीर को लेकर क्या चुनाव और विकल्प हैं। यहां अहम बात है औरत का अपना शरीर और उसका स्वास्थ्य। कानून, चिकित्सा शास्त्र और हक़ की इस लड़ाई में निकिता के स्वास्थ्य को नज़रअंदाज़ करके उसे सिर्फ़ बच्चा जनने का ज़रिया मात्र समझा गया। गौर करने वाली बात यह है कि इस पूरी प्रक्रिया ने निकिता के मानसिक, मनोवैज्ञानिक व शारीरिक स्वास्थ्य पर बुरा असर डाला जिसका सीधा प्रभाव उसके प्रसव पर पड़ा। लम्बे दौर में इस प्रक्रिया के निकिता के स्वास्थ्य पर क्या दुष्परिणाम होंगे यह तो वक्त ही बताएगा।

हमारे पुरुष प्रधान समाज में औरत के स्वास्थ्य को लेकर एक बेरुखी और खिलवाड़ का माहौल है। कभी खतरनाक गर्भनिरोधकों का चलन, कभी बीमारियों को नज़रअंदाज़ करना, कभी उसके अधिकारों का हनन, तो कभी शरीर का इस्तेमाल, पोषणयुक्त भोजन का अभाव और कभी प्यार, सम्मान और देखभाल की कमी, इन सभी का औरत के गिरते स्वास्थ्य से गहरा संबंध है।

अगर औरत खुश रहेगी और पुरुषों की ही तरह उसे भी आराम, पौष्टिक भोजन, स्वास्थ्य सेवाओं व सुविधाओं तक पहुंच व देखभाल का मौका मिलेगा तो न सिर्फ़ वह स्वस्थ रहेगी बल्कि सशक्त भी महसूस करेगी। हम सबला के इस अंक में हम औरत के सम्पूर्ण स्वास्थ्य की

ओर आपका ध्यान खींचना चाहते हैं। यहां हमने अपनी स्वास्थ्य समस्याओं से उबरकर सशक्तता की राह पर अग्रसर महिलाओं की बात की है। अपनी गुर्दे की बीमारी के बावजूद रोगियों के लिए पैसे इकट्ठे करने के लिए नाचती निकिता घीया, आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के माहौल में अपने पारम्परिक ज्ञान व कौशल को थामे रखने वाली दाइयां, अपने 'रिजक' की खातिर समाज व परिवार से जूझती लल्लन और इनके जैसी न जाने कितनी प्रेरक मिसालें हैं हमारे समाज में।

साथ ही औरतों के कुछ खास रोग जिनका ताल्लुक उनकी आत्मशक्ति और छवि के साथ है, जैसे स्तन कैंसर व तनाव पर भी जानकारी दी जा रही है। हमारा मानना है कि सशक्तता के लिए शिक्षा, रोज़गार, मौकों के साथ-साथ अच्छे स्वास्थ्य की भी विशेष अहमियत है। औरत को टुकड़ों में न बांटकर उसके सम्पूर्ण विकास पर ध्यान देकर ही सही मायने में सम्मान, समानता और सशक्तता के लक्ष्य को पाया जा सकता है।

-जुही

सिर्फ़
गर्भवती स्त्री
जानती है कि वह
बच्चा पैदा करने के लिए
तैयार है
या नहीं।

सिर्फ़ वह
तय कर सकती है कि
वह नौ महीने तक
गर्भ को अपनी कोख में
संभाल सकती है
या नहीं।

स्वायत्त प्रजनक चुनाव
हर औरत का
अधिकार है
और
इसमें
सुरक्षित गर्भपात चुनाव
भी
शामिल है।

साभारः नेटवर्किंग फ़ॉर राइट्स, कृति टीम

क्या देशज दाई परम्परा मातृत्व सेवा प्रणाली को सशक्त कर सकती है?

मीरा सदगोपाल

चाहे देर से सही भारत सरकार ने ग्यारहवीं योजना में इस बात को स्वीकारा है कि राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीतियों और कार्यक्रमों में गैर-एलोपैथिक या 'आयुष' पद्धतियों को समाहित करने की ज़रूरत है। आयुष यानी-आयुर्वेद, योग, यूनानी, सिद्ध व होम्योपैथी। एनआरएचएम में मातृत्व सेवा एक बहुत महत्वपूर्ण स्तम्भ है जो *'जननी सुरक्षा योजना'* के माध्यम से सुरक्षित जचगी पर ज़ोर देता है। पर अब पारंपरिक प्रजनन प्रक्रियाओं को भी इस कार्यक्रम में शामिल करने की दिशा में कदम बढ़ाए जाने चाहिए। आशा की जानी चाहिए कि अब अस्पतालों की असंवेदनशील,

फोटो: मीरा सदगोपाल

पटना की चमार बस्ती रूपसपुर की दाई सावित्री देवी ने एक मरे हुए बच्चे को आंवल गर्म करके ज़िन्दा किया।

व्यावसायिक प्रक्रिया को समुदाय और घर आधारित देशज प्रसव विद्या के साथ जोड़कर इस्तेमाल किया जा सकेगा। इस तरह की सोच को लागू करने के लिए वर्ग, जाति, जेंडर, सत्ता की विचारधारा में बदलाव, जिससे 'दाई परम्पराएं' व प्रजनन और प्रसव स्वास्थ्य सेवाएं साथ मिलकर इस्तेमाल किया जाएं, पर विशेष ध्यान देना होगा।

प्रशिक्षित दाइयां महिला स्वास्थ्य सेवाओं का औपचारिक रूप से कभी हिस्सा नहीं बनी हैं। सरकारी प्रशिक्षणों में भी परम्पराओं के ज्ञान और कौशल को शामिल नहीं किया गया। प्रशिक्षणों का मुख्य केन्द्र 'सफ़ाई' और 'स्वच्छता' तक ही सीमित था। दाइयों को हमेशा सामुदायिक सहयोगियों के रूप में ही देखा गया है। लिहाज़ा उनके विशेष प्रशिक्षण या औपचारिक स्वास्थ्य तंत्र में उनको शामिल करने के सतत प्रयास नहीं किए गये।

कई दफ़ा सवाल उठता है कि आखिर 'दाई' कौन होती है? दाई दक्षिण एशिया खासकर भारत में प्रसव और प्रसूति से जुड़े महिलाओं के लम्बे अनुभव की परम्परा है। दाई शब्द अंग्रेज़ों के ज़माने से चला आ रहा है और इसे हमारी सरकार ने सहज ही अपना लिया है। वास्तव में ग्रामीण भारत में जचगी के दौरान कई औरतें मदद करती हैं जिनके काम नाल काटने, जच्चा-बच्चा की सफ़ाई, मालिश, आंवल को दबाने आदि के होते हैं। इस सामूहिक प्रक्रिया में रिश्तेदार, पड़ोसी भी शामिल होते हैं। बच्चे के पैदा

एक महिला, लीना अब्राहम बताती हैं कि एक मिडवाइफ़ को तलाशते हुए वह एक इकहत्तर वर्ष की महिला से मिलीं, जिसने सौ से अधिक बच्चों के प्रसव में मदद की थी। यह महिला जड़ी-बूटी इस्तेमाल करती थी और उसकी तकनीक में आयुर्वेद और स्थानीय परम्पराओं का समावेश था।

होने के बाद उसकी नाल काटने के लिए एक दलित, निम्न वर्ग की महिला को बुलाया जाता है। भारत के कुछ इलाकों में दाई बच्चा जनवाने का पूरा काम करती है। महाराष्ट्र में दाई को 'सुईन' कहते हैं जो निम्न जाति की नहीं होती। जबकि मध्यप्रदेश में इसे 'चमारिन', 'बसोड़िन' या 'मेहतरानी' कहा जाता है जो दलित जातियां हैं। अनुमानित है कि भारत में लगभग तीन लाख से पांच लाख औरतें दाई का काम करती हैं और इनमें से अधिकांश अशिक्षित और गरीब होती हैं।

हमारे समाज में दाई परम्परा सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक रूप से दरकिनार महिलाओं के लिए बड़ी अहमियत रखती है। ये सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताएं अपने लम्बे अनुभव और पारंपरिक शैलियों से औरतों की प्रसव में मदद करती हैं। इनमें से कई दाइयां आयुर्वेद या यूनानी इलाज के तरीकों की भी जानकारी रखती हैं, हालांकि आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में इसको अहमियत नहीं दी जाती।

1978 में मैं एक बुजुर्ग 'बसोड़िन' गोमती बाई के साथ एक प्रसव में थी। मोतियाबिंद ग्रस्त, दुबली-सुकड़ी यह महिला इलाके की सम्मानित दाई थी। प्रसव में देर हो रही थी क्योंकि बच्चा उल्टा था। गोमतीबाई ने न सिर्फ़ जच्चा को बचाया बल्कि जब नवजात शिशु ने सांस नहीं ली तो उसने आंवल को गर्म करके बच्चे को ज़िन्दा किया। मां और बच्चे दोनों उसके हाथों में सुरक्षित रहे।

विडम्बना देखिए की यही गोमतीबाई एक दिन एक ब्राह्मण परिवार में प्रसव के लिए बुलाई गई। परिवार की बहू ने एक स्वस्थ बच्ची को जन्म दिया। चूंकि परिवार ब्राह्मण था इसलिए हम तीनों के साथ (दाई, जच्चा और मैं) अछूतों की तरह व्यवहार किया जा रहा था। पर गोमतीबाई और हमारे साथ किए जा रहे व्यवहार में भी बहुत फ़र्क़ था। सुबह जच्चा और मुझे मिट्टी के कुल्हड़ में चाय दी गई। पर गोमतीबाई को चाय नारियल के एक चटखे खोपरे में दी गई। चाय डालते समय दरार से गर्म चाय चू कर उस बूढ़ी दाई पर गिर गई। उसके मुंह से ज़ोर की चीख निकली। और मुझे लगा उसकी चीख में सदियों से होने वाले अन्याय और बदसलूकी का दर्द था।

फोटो: मीरा सदगोपाल

रूपसपुर की बुजुर्ग दाई फेकनीदेवी ने अपनी नानी व मौसी से दाईगिरी सीखी। वह मानती है कि आंवल को गर्म करने से और नाल की मालिश से मरे बच्चे में प्राण फूंके जा सकते हैं।

यह बड़े अफसोस की बात है कि दाई परम्परा धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है। उदाहरण के लिए केरल में तकरीबन तीस वर्ष पहले प्रसव के लिए स्थानीय दाइयों पर विश्वास किया जाता था। पर अब इसकी जगह चिकित्सकों व अस्पतालों ने ले ली है। देश के अन्य राज्यों में भी ऐसा हो रहा है।

दाई परम्पराओं में जानकारियों, कौशल, अनुभव, दूरदर्शिता के साथ-साथ संस्कृति, लोगों के रहन-सहन और रिवाजों की भी अहमियत होती है। जैसे पंजाबी सिख समुदाय में जचगी के बाद अनुभवी दाई ने मां और बच्चे की रक्षा के लिए खाट के नीचे आग, अनाज, लोहा और पानी रखने की बात की है। दाई यह भी कहती है कि जल्दबाज़ी में नाल काटने से मां को खतरा हो सकता है। आंवल को संभालकर गाढ़ने के वक्त मां और नवजात शिशु की रक्षा के लिए दाई एक खास मंत्र पढ़ती है। क्या हम इन तमाम व्यवहारों को एक तरफ चिकित्सा और दूसरी तरफ रिवाजों में बांटकर देख सकते हैं? क्या हम नाल को जल्दी न काटने की बात को मानें और औरत की रक्षा के लिए की गई तमाम तदबीरों को नज़रअंदाज़ कर दें? कई शोध और लेखों में भौतिकवादी समाजशास्त्रियों ने दाइयों

के परम्परागत रिवाजों को दकियानूसी और अजीब करार दिया है। पर मेरे अपने अनुभव में मैंने इन महिलाओं से बहुत कुछ सीखा है।

पारंपरिक रिवाजों और मान्यताओं में विविध नज़रिए देखने को मिलते हैं। प्रसव के समय औरत के शरीर के खुलने और बंद होने की बात दाइयां करती हैं। वह जल्दी नाल काटने से परहेज़ करती हैं। कुछ ऐसी ही विधाएं अन्य देशों में भी प्रचलित हैं। इनमें से काफ़ी परम्पराओं को हम वैज्ञानिक और आधुनिक चिकित्सीय कसौटी पर अगर जांचे तो पाएंगे कि दोनों में काफ़ी अंतर हैं। उदाहरण के लिए दाइयों का मानना है कि नाल जल्दी काट देने से आंवल औरत के सीने पर चढ़ जाती है जिससे उसकी मृत्यु हो सकती है। इस बात को डॉक्टर अक्सर नासमझी व फालतू कहकर हंसी में उड़ा देते हैं। पर मात्रिका समूह ने जब दाइयों के साथ मिलकर इसे गहराई से समझा तो पाया कि प्रसव के समय शारीरिक ऊर्जा ऊपर से नीचे की ओर जाती है जिससे बच्चे को बाहर आने में मदद मिले। आयुर्वेद में इस नीचे आने वाली ऊर्जा को "अपान-वायु" कहते हैं। यही ऊर्जा नाल जल्दी काटने से नीचे आने के बजाए ऊपर की तरफ खिंचती है जिससे महिला को तकलीफ़ होती है। मात्रिका टीम का शोध डॉक्टरों की भौतिक व अंगों

फोटो: मीरा सदगोपाल

पटना की नूरजहां खातून, मानती हैं कि आंवल की राख से मालिश की जानी चाहिए क्योंकि "उसी में तो जान है"।

दाइयों द्वारा देखभाल के तरीके, गर्भावस्था, प्रसव, स्त्री रोग या आम बीमारियां जीवन के एक अभिन्न हिस्से की तरह देखी जाती हैं। दूसरी ओर चिकित्सा शास्त्र तमाम रोगों और औरतों की समस्याओं को "खतरे" और "चिकित्सीय हल" पर आधारित करके देखता है।

की चिकित्सीय समझ और दाइयों की वैकिल्पक महिला केंद्रित और ऊर्जा आधारित समझ, जो शरीर में ऊर्जा के उतार-चढ़ाव की बात करती है, के बीच तालमेल के अभाव की बात पुनः दोहराती है।

हाल ही में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कुछ प्रसव समय के व्यवहारों को नुकसानदेय करार दिया है जिन्हें कुछ वर्षो पूर्व तक 'मॉडर्न' समझा जाता रहा है। इस सूची में एनीमा का इस्तेमाल, जघन-केश हटाना, प्रसव के दौरान खाने-पीने की वस्तुओं का परहेज़, बार-बार योनि परीक्षण, कमरों की अदला-बदली आदि प्रक्रियाएं शामिल हैं। इसके साथ ही पारम्परिक प्रसव व्यवहार में कुछ ऐसी प्रक्रियाएं हैं जिन्हें आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में वैध पाया गया है। इनमें से कुछ मुख्य हैं-

बच्चे की नाल को देर से काटना- एक शोध से पता चला है कि दो मिनट देर से नाल काटने से नवजात बच्चे में लौह तत्व में बढ़ोत्तरी होती है। संस्थान यह भी स्वीकारती है कि नाल को आंवल बाहर निकलने, बच्चे के रोने व नाल का धड़कना बंद होने के बाद ही काटा जाना चाहिए।

उकड़ू बैठकर प्रसव कराना- पारंम्परिक तरीकों में उकड़ू बैठाकर बच्चा पैदा कराया जाता रहा है। लेटने से बच्चेदानी की क्रियाओं में रुकावट पहुंचती है जबकि बैठने से बच्चेदानी और ज़मीन के गुरुत्वाकर्षण में एक सीधा संबंध होता है जो बच्चा पैदा करने में सहायक होता है। लेटने से बच्चे के शरीर में "प्राण-वायु" यानी ऑक्सीजन भी कम पहुंचती है।

प्रसव के दौरान लगातार महिला की देखभाल- औरत की भावनात्मक, शारीरिक और सामाजिक ज़रूरतों को ध्यान में रखकर देखभाल करने से प्रसव में आसानी होती है। यह भी पाया गया है कि प्रसव के समय अकेली रहने वाली औरतों में ज़्यादातर फोरसेप्स या सिज़ेरियन ऑपरेशन होने की संभावना ज़्यादा होती है।

योनि की तेल मालिश- विश्व स्वास्थ्य संस्थान ने इस पारम्परिक पद्धति को भी वैध करार दिया है। दाइयां समझाती हैं कि योनि की मालिश प्रसव मार्ग को लचीला बनाती है और बच्चे के बाहर निकलने के समय योनि के फटने-कटने की संभावना बहुत कम हो जाती है। योनि के कटने व टांके लगने से संक्रमण, खून की कमी और तकलीफ़ का खतरा बढ़ जाता है। उनका मानना है कि कुछ ऐसी दाइयां हैं जो सीधे, उल्टे या कठिन प्रसव को संभालने में डाक्टरों से ज़्यादा निपुण हैं।

दुनिया के विभिन्न हिस्सों में प्रसव के पश्चात अगर आंवल बाहर नहीं आती तो उसे निकालने के लिए कई तरीके इस्तेमाल किए जाते हैं। इसमें पेट के भीतर दबाव बढ़ाने के लिए महिला को चमड़ा चबाने, नमक या लहसुन का पानी पिलाकर किसी प्रकार उल्टी कराने का प्रयास किया जाता है। इससे आंवल को बाहर निकालने में मदद मिलती है।

इन तमाम बातों से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि महिलाओं को सम्पूर्ण स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैय्या कराने में एक व्यापक स्वास्थ्य नीति का होना बहुत ज़रूरी है। पर एलोपैथी, बाज़ारीकरण और तकनीक के मिले-जुले हितों ने स्वास्थ्य को पूरी तरह आधुनिक चिकित्सा शास्त्र पर केंद्रित कर दिया है। इसमें सांस्कृतिक दृष्टि से संवेदनशील देखभाल के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। पश्चिमी चिकित्सा विज्ञान ने महिला के प्रजनन को एक प्राकृतिक प्रक्रिया की जगह एक रोग का स्वरूप प्रदान कर दिया है जिसमें चिकित्सीय निदान दिये जाने चाहिए। इसलिए कृत्रिम हारमोन, सिज़ेरियन प्रसव, कृत्रिम गर्भधारण तकनीकों की भरमार हो गई है। एक अन्य कारण है स्वास्थ्य सेवाओं में मौजूद सत्ता का व्यापक ढांचा जिसमें न सिर्फ़ वर्ग, जाति, जेंडर, उम्र, शिक्षा, रुतबे और धर्म का ज़ोर है बल्कि विदेशी और स्थानीय पद्धति का भी। स्वास्थ्य केंद्र के नए अनुभवहीन डॉक्टर प्रसव सेवा के संदर्भ में बुज़ुर्ग दाइयों से बेहतर समझे जाते हैं। अगर दाइयों को प्रशिक्षण भी दिया जाता है तो वह महज सफ़ाई, गोलियां, इंजेक्शन लगाने तक सीमित होता है और अधिकांश समय एकतरफ़ा भी। जिन स्थानों पर स्वास्थ्य सेवाओं की कमी होती है वहां भी दाइयों को प्रसव में देखभाल करने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता। अफ़सोस की बात है कि भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य अपनी सकारात्मक और प्रभावशील स्थानीय परम्पराओं को नज़रअंदाज़ करती है। हमने कई बार देखा कि समुदाय में देशज स्थानीय तरीकों से स्वास्थ्य समस्याओं का हल निकाला जाता है। पर इन प्रक्रियाओं को सम्मान और मान्यता नहीं मिलती।

दाइयों के हितों और औरतों के स्वास्थ्य पर केंद्रित कुछ बदलाव की पहल समूहों और संस्थानों की ओर से की गई हैं। इनमें मात्रिका प्रोजेक्ट, गुजरात दाई संगठन और जीवा कलैक्टिव का काम उल्लेखनीय है। हमें ज़रूरत है कि इन समूहों के प्रयासों के ज़रिए हम दाइयों के काम को और अधिक गहराई से समझें।

पर समूह और संगठनों के अलावा यह सरकार का भी दायित्व है कि वह दाई परम्पराओं के प्रामाणिक व्यवहारों व अनुभवी दाइयों को स्वास्थ्य सेवा प्रणाली की मुख्यधारा में जोड़ने की दिशा में पहल करे। इसके लिए सबसे पहले दाई परम्पराओं को वैधता प्रदान करनी होगी। इन निम्न वर्ग की महिलाओं के ज्ञान और समुदाय आधारित जानकारियों को मान्यता देने में हमें वर्ग, जाति, जेंडर और सत्ता की विचारधाराओं से जूझना पड़ेगा। महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य पर केंद्रित ये परम्पराएं पितृसत्तामक स्वास्थ्य व्यवस्थाओं के बीच अपनी जगह तभी बना सकती हैं जब मुख्यधारा दृष्टिकोणों में परिवर्तन किए जाएं। डाक्टरों, नर्सों व स्वास्थ्य से जुड़े तमाम व्यावसायिकों व शिक्षितों को अपनी सोच को तहेदिल से बदलना होगा। औपचारिक स्वास्थ्य सेवाओं में दाई और उनकी परम्परागत शैलियों का समावेश नीति व कार्यक्रमों में एक सृजनात्मक विकल्प पेश करने की क्षमता रखता है। इससे एनआरएचएम में सामुदायिक भागीदारी सुनिश्चित हो सकेगी जो स्वास्थ्य सेवा का अहम पहलू है। सरकार के इस अग्रणी कदम से हम आशा करते है कि एक दिन चिकित्सा शास्त्र और दाई परम्पराओं की अच्छाइयों का गठबंधन हो सकेगा।

सारांशः जुही जैन

यह लेख मीरा सदगोपाल के अंग्रेज़ी लेख 'स्ट्रेन्थनिंग चाइल्डबर्थ केयरः कैन द मेटरनिटी सर्विसिज़ ओपन अप टू द इंडिजनस ट्रेडिशन्स ऑफ़ मिडवाइफ़री' पर आधारित है। रूपसपुर की दाइयों से परिचय के लिए हम देविका विश्वास और उर्मिला शर्मा के आभारी हैं।

दाई संगठन घोषणा-पत्र

एनआरएचएम जैसे जन स्वास्थ्य कार्यक्रमों में दाइयों की भूमिका पर विचार-विमर्श के लिए, ग्यारह राज्यों के दाई संगठन और नागरिक समाज समूह समेत कई दाइयों ने पहली बार नई दिल्ली में, 1 और 2 मई को एक राष्ट्रीय स्तर की परामर्श गोष्ठी में भाग लिया। अनुमानित है कि देश भर के शहरी और ग्रामीण इलाकों में करीब 10 लाख से ज़्यादा दाइयां अपनी सेवाएं प्रदान कर रही हैं।

इस परामर्श प्रक्रिया का आयोजन एनआरएचएम की एक स्थायी समिति कम्युनिटी ऐक्शन के सलाहकार समूह, गुजरात दाई संगठन, पॉपुलेशन फाउंडेशन ऑफ़ इंडिया और सेंटर फ़ॉर हेल्थ एंड सोशल जस्टिस ने मिलकर किया। इसमें स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष, जीटीज़ेड, विश्व स्वास्थ्य संगठन और यूएसएड के प्रतिनिधियों ने भी हिस्सा लिया।

इस गोष्ठी का उद्देश्य समुदायों में दाइयों के लम्बे दौर के योगदान को केंद्र और राज्य स्तर पर मान्यता दिलवाना था। गोष्ठी में दाइयों की भूमिका को दोबारा परिभाषित करने के अलावा, जन्म के बाद देखभाल करने वाली एक स्वास्थ्य कार्यकर्ता के रूप में दाई की पहचान स्थापित करने का भी लक्ष्य रखा गया था।

गोष्ठी की शुरूआत करते हुए दाई संगठन गुजरात की अध्यक्ष, बाबीबेन परमार ने कहा, *'हम दाइयां दिन-रात अपने गांवों में अपनी सेवाएं दे रही हैं। बच्चे के जन्म के दौरान सहयोग मुहैय्या कराने के अलावा हम टीकाकरण, खसरे और एचआईवी/एड्स से भी बचाव करती हैं और स्वास्थ्य बीमा का भी प्रचार-प्रसार करती हैं। हमने गर्भावस्था के दौरान पैदा होने वाले खतरों की पहचान करना भी सीख लिया है। हम यह भी सुनिश्चित करती हैं कि गर्भवती महिलाओं को जब भी ज़रूरत हो, वे जीवनरक्षक प्रणालियों तक अपनी पहुंच बना सकें।'*

झारखंड की एक दाई, बिजला ने अपनी कहानी सहभागियों को सुनाई। तीसरी बार गर्भावस्था से गुज़र रही एक महिला के जीवन को पैदा हुए खतरों और जटिलताओं की उसने पहचान की और उसकी जान बचाई। झारखंड में ऐसा एक भी अस्पताल नहीं है जहां सिज़ेरियन ऑपरेशन की सुविधा उपलब्ध हो। इसलिए खतरा पैदा होते ही वह महिला को पड़ोसी राज्य, पश्चिम बंगाल ले गई जहां सिज़ेरियन की व्यवस्था उपलब्ध थी। जब महिला का प्रसव होने वाला था तब वहां कोई चिकित्सक मौजूद नहीं था। बिजला ने तुरन्त किसी तरह डॉक्टर को बुलाया और महिला का सिज़ेरियन कामयाब हो सका।

राजस्थान के चित्तौड़गढ़ से आई नर्मदाबाई ने गांव स्तर पर प्रशिक्षण के माध्यम से दाइयों की कुशलता को बढ़ाने की बात कही। उनका मत था कि इससे यह सुनिश्चित हो सकेगा कि

समुदाय में दाई की दक्षता को सम्मान मिले। साथ ही जन स्वास्थ्य तंत्र में दाइयों की भूमिका को मान्यता भी मिल सकेगी।

स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय की सहायक आयुक्त, डॉ. मनीषा मल्होत्रा ने कहा, *'एनआरएचएम में दाइयों की भूमिका को नज़रअंदाज़ नहीं किया गया है। यह तो राज्य सरकारों की ज़िम्मेदारी है कि वह किन मौलिक तरीकों से दाइयों को अपने तंत्र में शामिल करती है। एनआरएचएम के अंतर्गत दाइयों को वित्तीय अनुदान दिए जाने सम्बन्धी दिशानिर्देशों पर विचार चल रहा है।'*

इसके बाद दाइयों की समस्याओं पर बहस हुई जिसमें दाइयों और सरकारी कार्यक्रम, आशा के बीच होने वाले विवादों, औपचारिक स्वास्थ्य सुविधाओं में दाइयों के प्रति सम्मान की कमी तथा स्वास्थ्य सेवाओं के अभाव जैसे मसले उठाए गए। एक ओर जहां सरकारी आंकड़े कहते हैं कि मध्य प्रदेश के सभी प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र चौबीसों घंटे सक्रिय रहते हैं, वहीं दूसरी ओर इसका खंडन करते हुए खरगौन ज़िले की जानकीबाई ने बताया कि उनके इलाके में मौजूद दस केंद्रों में से कोई भी चौबीस घंटे खुला नहीं रहता है। यहां तक कि इनमें से तीन तो बंद भी हो चुके हैं। ऐसे हालात में दाइयों की भूमिका और ज़्यादा निर्णायक हो जाती है।

गोष्ठी में निम्न सिफ़ारिशें की गईं:

- एनआरएचएम में दाइयों को आशा, एएनएम और आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के बराबर मान्यता और सहयोग दिया जाना चाहिए।
- दाइयों द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली पारंपरिक विधियों, जैसे सलाह, मालिश, पारंपरिक दवाएं और पोषण विधियों आदि को मान्यता देते हुए उनका दस्तावेज़ीकरण किया जाना चाहिए।
- बच्चे के जन्म से लेकर समुदायों में देखभाल सम्बन्धी सुविधाओं के परिप्रेक्ष्य में दाइयों की व्यापक भूमिका को वैधता दी जानी चाहिए। जन स्वास्थ्य कार्यक्रमों के प्रति समुदायों में जागरूकता फैलाने, गर्भवती महिलाओं को भावनात्मक और शारीरिक सहयोग मुहैय्या कराने आदि के मामले में दाइयों की भूमिका अहम होती है।
- दाइयों के प्रशिक्षण के लिए एक मान्यता देने वाले परिषद की स्थापना की जानी चाहिए जिससे गुणवत्तापूर्ण मानकों को सुनिश्चित किया जा सके।
- दाइयों के राष्ट्रीय, राज्य और स्थानीय स्तर के संगठनों व मंचों को सहयोग के माध्यम से उनकी सामूहिक आवाज़ को ताकत प्रदान की जानी चाहिए। गुजरात और राजस्थान के दाई संगठन इसके लिए उदाहरण बन सकते हैं जहां 20,000 दाइयां संगठित हैं।
- दाइयों की क्षमता बढ़ाने और उनको संगठित करने के लिए ठोस प्रयास किए जाने चाहिए।

अनुवादः अभिषेक श्रीवास्तव

रिजक

मैत्रेयी पुष्पा

बेहाल है लल्लन!

अमरौख गाँव का स्वीपर, जो मोंठ के अस्पताल में काम करता है, अभी-अभी खबर देकर गया है कि आसाराम बसोरों ने अस्पताल के सामने खड़े होकर नारे लगाए, गालियाँ बकीं। साथी ईंट-पत्थर फेंक रहे थे। डाकधर साहब आग-बबूला हो उठे। तुरंत थाना-पुलिस का सिपाही बुलवा लिया। तुरन्त आसाराम को कैद कर लिया। वह हवालात में...

लल्लन का रोम-रोम काँप गया। इस तरह की वारदात आज वह तीसरी बार सुन रही है। हर बार आसाराम उसे अंधकूप में धकेल देता है। स्वीपर लल्लन के बदहवास चेहरे को देखता रहा। "सीताराम भौजी, अब चलता हूँ। उसे छुड़ाने की जुगत करना।"

लल्लन को अचानक चेत आया, बोली, "भइया, बिरादरी का कोई आदमी जमानत के लिए"

"आँ हाँ, कोई नहीं।"

लल्लन के मुख से गालियाँ फूटने लगीं - "बिंड़ा रह हवालात में। बड़ा मरता था बिरादारी के लिए। सगे खास अब कहाँ अलोप हो गए? हत्यारे, सब अपने स्वारथ के हैं।"

स्वीपर चला गया। लल्लन खड़ी रह गई अकेली।

पाँवों में सत्त नहीं बचा, उससे खड़ा नहीं रहा जा रहा। माथे में घुमेर उठ रही है, और कान सनन-सनन! क्या करे, क्या न करे? उसके लिए आसाराम की जमानत कराना ज्यों सरग के तारे तोड़ना।

*****

घुटनों में मुँह गाड़े बैठी है लल्लन। ऐसे कब तक चलेगा? कब तक खींचेगी पूरी गृहस्थी का बोझ? बेआधार, बेरोजगार कैसे बैठा रहे कोई। भूखे पेट को कब तक मसोसे? कैसे थे हम? क्या धजा बन गई? मुकद्दर की मार कहो सो भी नहीं। अपने रिजक से, अपने पेशे से बेईमानी करी, तो भोगेंगे नहीं?

आज की नहीं है लल्लन। पैंतीस-अड़तीस बरस उमर गुजार चुकी है। गौना होकर आई थी तो हद से हद सोलह-सत्रह बरस की रही होगी। बीस-बाईस की होते-होते सास का आसन ऐसे लिया जैसे पिरौना वाली दाई बहू को गद्दी संभलवाने तैयार ही बैठी थी। अम्मा के हाथ का जस ज्यों की त्यों उतार लिया अपने हाथों में, अपनी तलहथियों में, उंगलियों में।

उसे अम्मा की असीस याद आ गई। "बेटी, मेरा असीरबाद तेरे संग है हरदम, तेरे ऊपर। बस दो बातें याद रखना लल्लन! बच्चा जनाते बखत खुरपी-हँसिया खौलते पानी से धोकर पोंछकर फिर नरा (नाल) काटना। और जच्चा के कोठे में हवा का परगास रहे। वैसे, तू हौसले, हिम्मत वाली जनी है। तेरे ऊपर मेरी बड़ी उम्मीद है बेटा।"

इस बात को वह आज भी मानती है, उसे सास की असीसें फल गई। अम्मा के नाम से भी आगे गया उसके हाथ का जस। लल्लन के होते हुए गांव-आनगांव वालों को पिरौनावाली दाई की कमी नहीं अखरी।

आज सोचती है तो कलेजा फटता है। ऐसे लगता है, जैसे वे सब बीती बातें हों, सपने हों। वे दिन कहां हिरा गए जब अमगांव से अमरोख तक के माते-मोदी उसके लिए गाढ़ी-गढ़ला जोतकर लाते थे। उसी मान-सम्मान के चलते हाथ निपुणता, कुशलता से चलते थे। फंसे, अधफँसे शिशु को अनुभवी उंगलियों से बाहर खींचकर जच्चा को निष्कंटक निरबार लेती थी।

*रिजक का अर्थ है- पेशा

वही लल्लन आज घुटनों में मुँह दिए बैठी है।

*****

सिकंदरा और खिल्ली के अहीरों में सिर-फुटउअल दुश्मनी थी। ऐसा बैर कि ब्याह-काज, पाँत-पंगत तो कहे कौन, मौत-गमी तक में आना-जाना नहीं। हाट-बाजार भी मिल जाते थे तो मुंह फेर लेते थे, एक दूसरे को देखते ही।

उन्हीं दिनों हरदयाल अहीर की बहू की जान खतरा खा गई। पहलौटी का बच्चा, और बहू थी अनजान, अखेल, अल्हड़। सिर्रिन ने तीन दिन तक तो किसी को इल्म नहीं होने दिया कि पीरें आ रही हैं। वो तो पड़ोसिन चूल्हे की आग मांगने आ गई। बहू का बेहाल रूप देखा तो सन्न! तुरन्त बाहर की ओर भागी और हरदयाल को सचेत किया, “बहू तो रेत की मछली-सी छटपटा रही है। दाई को बुलाओ जल्दी। जल्दी से जल्दी!”

कुछ नहीं सोचा हरदयाल अहीर ने। दौड़ते-दौड़ते आ गिरे लल्लन की चौखट पर। हरदयाल का लुटा, उजड़ा, बदहवास मुख देखते ही वह घोड़े पर उनके पीछे बैठ ली थी। उसके हाथ में जस था, सिर पर अम्मा की असीस। बहू को जिंदगी मिली। हरदयाल के घर फूल-सी नातिन ने जनम लिया। उस बिटिया की बदौलत ही सिकंदरा खिल्ली के अहीरों में आना-जाना और मेल-मिलाप हुआ।

मैंने तो तुम्हारी नसीहत, तुम्हारी कहनावात सिर-आँखों रखी थी अम्मा, आज तक। याद है तुम्हारे बोल-बेटी, अपने रिजक में भेदभाव, बैर-मिताई, ऊँच-नीच का ठौर नहीं। अपने पेसा से बेईमानी मत करना। रोजी का ठौर भगवान् का ठौर है।

पर अम्मा, तुम्हारा ही बेटा उसी की जिद... पेटों का गुजारा तो किसी तरह हो रहा है, ऊपर से आसाराम की जमानत...? उसके मन में आया, कह दे असल बात। सुना दे अम्मा को पूत की करतूतें, पर थम गई लल्लन। क्या फायदा? रो-रोकर आंखें फोड़ लेगी डुकइया।

*****

बूढ़ी अम्मा के भीतर जब-न-तब पिरौनी वाली दाई कुनमुनाने लगती है। थमी हवा का मिजाज बदलती हुई बोलीं, “लल्लन, हमारे जाने मोदी की बहू को नवाँ महीना जा रहा होगा। काछिन की बहू तो कैरयी थी कि लागत असाढ़ दिन पूरे ही लेंगे। पहलौठी का बालक नहीं खेंचता ज्यादा दिन। लागत असाढ़ ही हो लेगा, देख लेना।”

लल्लन सुनकर अनसुना कर देना चाहती थी पर सास का विवश चेहरा देखकर उस पल लल्लन को तरस आ गया, संयत होकर बोली, “काहे को दिन गिनती हो अम्मा अपन को क्या लेना-देना? आम खाने ही नहीं हैं तो पेड़ों की गिनती बिरथा ही ठहरी। कौन महीना? कब होगा? तुम भी अम्मा।”

“सो, तो है। पर बेटी, नहीं मानता मन। रिजक जो जिंदगानी-भर करते रहे, उसे साल खांड़ में कोई कैसे भूल जाए? क्या खबर थी कि खोजी ऐसा कौल भरेंगे”...

लल्लन आह भरकर रह गई, कराहती सी बोली, “अब तो अपन राजा हो गए अम्मा। गलीज काम छोड़कर महाराजा। हंसी-खुशी, दुक्ख, गम, गीत, पंखों में शरीक होने के बखत हवा हुए। अकेले-अकेले का रोना-हंसना रह गया है। सो, चाहे हंसो-गाओ, भले रोओ-कराहो। अपनी-अपनी ढपली, अपना-अपना राग।”

अम्मा के मन में क्या घुमड़ रहा होगा? वही न, जो उसके मन को धुन रहा है। जिस पर अम्मा ने कई बार आसाराम के साथ कलह की थी। लल्लन कहे तो क्या कहे? अम्मा से आंख मिलाने का हौसला उसका नहीं। लोगों के संग उसकी भी मति मारी गई थी।

सचमुच वह महूरत बुरा था, जब आसाराम ने माँ से कहा था, “अम्मा गाँव-गाँव से दाइयाँ टिरैनिंग के लिए जा रही हैं। शहरी चाल से बच्चा जनाना सिखाया जाएगा उन्हें। लल्लन को भी जाना होगा। सिरकारी ऐलान है। नहीं तो दाइगीरी नहीं कर सकेगी।”

वे बोलीं, “कैसी सहरी चाल बता रहा है हमें? वहाँ क्या आदमी का बच्चा नहीं जनमता? बरसों से जन्त-जापे कर रही है लल्लन, क्या सीखना बाकी रह गया रे? कठिन से कठिन सोरें निबटाई हैं उसने। सहर की डाकधरनी कौन-सी भैमाता की धजा थमा देगी?”

हँसते-हँसते आसाराम बोला, “अम्मा, नए जमाने की चाल तुम क्या समझो? आजकल पेट में चीरा लगाकर डाकधरनी ऊपर से ऊपर ही बच्चा काढ़ लेती हैं, और तो पेट में दूरबीन लगाकर यह भी बता देंगी कि मोंड़ा जनम लेगा या मोंड़ी।”

अम्मा की बूढ़ी आँखें अचरज से फैल आई थीं।

"महामाई की सों अम्मा। हम मसखरी नहीं कर रहे।"

"भैमाता के कुदरती खेल में मनिख दखल दे। मोरे राम, कलजुग ही आ गया," अम्मा बुदबुदाई। लल्लन सास के पांव छूकर मोंठ 'टिरैनिंग' के लिए जाने लगी।

*****

मिडवाइफ सेंटर पर लल्लन ने अनेक नई बातें सीखीं। नई-नई चीजें देखीं। झक्क सफेद कैंची, साबुन की लाल बट्टी, रोयेंदार नीली-पीली तौलिया, डिटौल की पीली शीशी, दूध-सी सफेद चिलमची, बेदाग सफेद गौज और नाल बाँधने के लिए सफेद काड (धागा)।

याद करती है तो आज भी कौंधती हैं वे चीजें आँखों में। उसे लगा था, वह तो निपट अज्ञान थी। अनाड़ीपन के चलते ही जना रही थी बच्चे।

मेमसाब (मिडवाइफ) ने केसबक्सा थमाकर आँखों-दवा, पौडर, अनीमा और इंगेसन (इंजेक्शन) के बारे में बताया था। डिलेवरी के टैम चूड़ी-छल्ला नहीं पहनना है, इनफेसन (इन्फैक्शन) का डर लगता है।

लल्लन की टिरैनिंग खतम हुई। वह गाँव आई, डाकधरनी की अदा से उतरी थी। सफेद धोती, उलटा पल्ला, बालों का जूड़ा, पाँवों में साफ नीली चप्पलें। घूँघट, न परदा। गाँव में खबर फैल गई, लल्लन मेम बनकर आई है।

जिस तरह आई थी, उसी तरह रही। बच्चा जनाने बुलाई जाती तो मेमसाब की तरह व्यवहार करती। बच्चा होने के बाद निर्देश सुनाती— तेल काजल मत लगाना बच्चा को। लोई मत फेरना, कोमल चमड़ी चिर जाएगी। जच्चा-मच्चा के पास गोबर-मोबर न लाना। टिटनस बन जाएगी। पोलिया (पोलियो) की बूँदे जरूरी पिवा लाना मोंठ जाकर।

लल्लन दाई नहीं, सचमुच डाकधरनी थी गाँव की। लड़की के जन्म पर सोहर गाने से, नेग देने से जो लोग अनखाते थे लल्लन उनसे नई चाल की बातें करती— फैमिली पिलानिंग का जमाना आ गया है मोड़ा-मोड़ी में भेद नहीं माना जाता।

क्या दिन थे! दिया-लिया उसके आँचल में न समाता था। बसोर टोले की हवा बदल गई थी। बहू-बेटियाँ उसे सिष्टर-सिष्टर कहकर पुकारतीं। वह पी वी, परगनेंट, आरन, कैल्सम और बिटामन वाली अस्पताली बोली बोलती।

आसाराम की भी वेशभूषा बदल गई। वह सफेद कमीज, सफेद धोती पहनता। रंगीन पगड़ी बाँधकर ब्याह-कारज, परब-त्यौहार रमतूला बजाने जाता। अम्मा के लिए खैनी-तम्बाकू आता। लल्लन मोंठ की मेमसाब की तरह घड़ी-घड़ी चीनी की चाय पीती।

कहते हैं न, सुख के दिन लंबे नहीं होते। उन्हीं दिनों बिरादरी वालों के सिर पर कोई देव सवार हुआ था। आसाराम बौराने लगा। बसोरों ने जिद ठान ली। बोले, "हमारी जनीमानसें बच्चा जनाने घर-घर नहीं जाएंगी। नाल नहीं काटेंगी। बसोर की जाति है तो क्या हम गंदा काम करेंगे? वैसे भी जमाना बदल रहा है अब। हमारी जाति वालों की बात सबसे पहले सुनी जाएगी। हम सिरकार दरबार जाएँगे। नौकरी माँगेंगे।" बसोरों ने सुना दिया।

आसाराम ने लल्लन को रोक दिया, "बिरादरी से बाहर होकर रहोगी? अपने इलम की कीमत तुम ही नहीं जानोगी तो दूसरा कौन कदर करेगा? बसोरिन ही रह जाना।"

अम्मा हाय-हाय करती रह गईं, कि अब क्या हो? दइया, बच्चा जनाना, न रमतूला बजाना। पेट कैसे भरे जाएँगे?

फिर क्या था, गाँव-आनगाँव की बसोरिनें, मोदिन, मातोन, पंडितायनों की चाल चलने लगीं। रानी-महारानी बनी अपनी-अपनी मड़ैयों के पट-रंगपुरों में विराजने लगीं।

जनीमानसों को सोहत है साज- सिंगार करके दब-ढँककर बैठे रहना? यही करते-करते अनाज खतम। भूख जोर पकड़ने लगी।

सबसे पहले मड़ोरा के भदइयां ने नियम तोड़ डाला। उसकी जनी सबको अँगूठा दिखाकर डिलेवरी कराने चली गई। किसानों के यहां से नाज-पानी ले आई। बिरादरी में हाहाकार मच गया। कई घरों में ऐसा ही हुआ - कहीं चोरी-छुपे, तो कहीं उजागर।

आसाराम ने दूसरी जुगत खोल ली। गाँव-गाँव डुग्गी पिटवा दी कि जो कोई यह काम करेगा, उसके बाल-बच्चों का शादी-ब्याह बसोर लोग मंजूर नहीं करेंगे।

इस फैसले ने असर किया। लोग डर गए।

आसाराम ने पार्टी बना ली। दाइयों की अर्जी लेकर कभी ब्लॉक में जाएँ तो कभी अस्पताल में, कभी हेल्थ-विजटर सेंटर पर। रोज आना, रोज जाना। खीसा खाली हो गया, पांव छिल गए।

सरकारी आदमी एक ही जवाब देते- दाइयों को ट्रेनिंग इसलिए दी गई थी कि वे ग्रामीण औरतों के प्रसव के समय सफाई और प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा का ध्यान रखें। गाँव में फैले अंधविश्वासों को दूर करें। नौकरी और वेतन से इसका क्या ताल्लुक?

आसाराम बसोर बिरादरी को भड़का आया- हम हड़ताल करेंगे। अपना हक्क माँगेगे। जागरुक हैं हम, ईंट से ईंट बजा देंगे। हमारी कौम की सुनवाई न हो, ऐसा हो नहीं सकता।

लल्लन रह-रहकर पछताती है। क्यों आसाराम की डग पर ही डग धरती चली गई फिर? कलेजे में उमड़ती दया-माया भी सुखा डाली।

वह खुद से ही हिसाब मांग रही है आज। मास्टरजी की बहू मछली सी छटपटाती रही। मास्टरनी समझाती रही, “बेटी, जिंदगानी से बड़ी नहीं होती कोई बिरादरी। तेरी बिरादरी से तेरे बदले की माफी मैं माँग लूँगी, भरे पंचों में। तू चल तो सही। मोंठ के सेंटर तक ले जाने की हालियत में नहीं है बहू।”

मगर लल्लन दाई बहरी हो गई। नहीं गई। क्यों जाए? तालीम पाई हुई दाई ठहरी।

मास्टर जी की बहू मछली-सी तड़पकर मर गई।

कपूरे कक्का की पुतोहू। अधबीच फँसा बच्चा। निरबारना कोई मुश्किल नहीं था लल्लन दाई के लिए। अनाज के दानों की एवज डिलेवरी करना उसकी शान के खिलाफ पड़ता है। वह नहीं गई।

अब तो गाँव के लोग खुद भूल चुके हैं लल्लन को। उसकी ओर देखना छोड़ दिया है सबने। उसके घर की ओर जाने वाली गली में आता-जाता नहीं दीखता कोई। वह तो दूध में से मक्खी की तरह निकाल फेंकी।

सोचते ही लल्लन काँपने लगी। भीतर से जैसे सत्त निचोड़ रहा हो कोई। पाँव उखड़ रहे हैं। कौन उखाड़ रहा है पाँव? आसाराम जो हवालात में कैद है।

मगर यह कराह... नहीं, उसका वहम है। आदत कहां छूटी है? आग लगे इन कानों को, उसको भी भरम होता रहता है। आदत कहां छूटी है?

“ओ मतारी ऽऽऽ... ओ बाईऽऽऽ”

कहीं मोदी की बहू... नहीं? हाँ, मोदी की बहू ही होगी। काछी की बहू कह तो रही थी कि लागत असाढ़...

यकायक उसकी पाँचों इंद्रियाँ जाग्रत हो गईं। हाथ का अँगूठा तेजी से चलने लगा-क्वार, कातिक, अगहन, पूस, माघ, फागुन, चैत, बैसाख, जेठ, असा... लागत असाढ़। एक साँस में गिन गई वह। माथा चकरी की तरह घूमने लगा।

कराहट निरंतर बढ़ती जा रही है। लगातार — ओ मतारी ऽ - ओ बाई... सच्ची में मोदी की बहू है। धक्-धक् करने लगा लल्लन का कलेजा। बेचैन हो उठी सम्पूर्ण देह...

उसी समय मोदी की बहू जोर से चीखी। यह बड़ा दर्द है। बस, और एक-दो ऐसे ही दर्द, फिर बच्चा...

लल्लन सुधबुध भूल गई। क्या करे, क्या न करे? देह में बिजली-सी कौंधी। पाँवों में आँधी-तूफान भर गया। वह बदहवास-सी, नंगे पाँव भागती गई। भागती ही गई मोदी के द्वार तक।

गिरती-सँभलती मोदी के चौखट से जा लगी, बुरी तरह हाँफ रही थी।

“ए ऽ ऽ! ए ऽ ऽ!” वहाँ बैठी औरतें एक स्वर में चिल्ला उठीं। “लल्लन।” माते की बहू ने आश्चर्यपूर्वक टोका।

लल्लन झटपट सँभलकर बैठ गई और फुर्ती से जच्चा को अपनी बाँहों में भर लिया। तेजी से साँस लेती हुई बोली, “दुलहिन, हमारे रहते तु-म...” आँखें भरी थीं। गला रुँध आया। लगा कि आज अपने ही हक की भीख माँग रही है, माफी चाह रही है वह...

उसी क्षण बच्चे ने जन्म लिया। आऊँ ऽऽ आंऊ! लल्लन के कानों में अनहद नाद बजने लगा। मुख पर उल्लास गुलाल सा बिखर गया। गंदगी में सने नवजात शिशु को अपने साँवले हाथों में उठाए चमकी आँखों से विभोर-सी देखती रही, ज्यों अमोल संपदा समेट ली हो और अपनी गद्दी पर राजरानी की तरह बैठी हो।

पहली सोर का गीत बरबस ही उमड़ आया कंठ में। छलक पड़ा होंठो से — “जसोदा जी से हँस-हँस पूछत दाई/नंदरानी जी से...”

मूल कहानी के सम्पादित अंश

*****

बढ़ती कीमत : घटता पोषण तालमेल कैसे?

वी. रुक्मिणि राव

हम सब जानते हैं कि पिछले कुछ महीनों में कीमतों में भारी बढ़त हुई है। सरकारी आकड़ों के अनुसार मंहगाई में 11.47 प्रतिशत बढ़ोत्तरी हुई है। पर खाद्य सामग्री खरीदने वाले हम सब ग्राहक जानते हैं कि भोजन की मूल सामग्री में तकरीबन 30 से 40 प्रतिशत की बढ़त हुई है। चावल, दाल, गेहूं, दूध व तरकारी सभी की कीमतें आसमान छू रही हैं।

इस सदी की शुरूआत में विश्व के सभी नेताओं ने संयुक्त राष्ट्र की बैठक में सन् 2015 तक गरीबी को घटाकर आधा कर देने का खुद से वादा किया था। पर अब अनुमानित है कि बढ़ती मंहगाई के कारण दस लाख से भी अधिक लोग गरीबी रेखा के नीचे जीने को बाध्य हो जाएंगे। विश्व खाद्य संगठन के अनुसार विश्व के करीब दो सौ अरब लोग खाने में 'माइक्रो-न्यूट्रीयंट डेफ़िशेंसी' यानी भोजन में पर्याप्त पोषक तत्वों की कमी का शिकार हैं।

अगर हम भारत पर एक नज़र डालें तो हालातों में गंभीर विरोधाभास दिखाई देता है। एक ओर हरित क्रान्ति से खाद्य उत्पादन में बढ़ोत्तरी हुई है तो दूसरी ओर देश के एक-तिहाई हिस्से की इस भोजन तक पहुँच नहीं है और उन्हें भूखे पेट सोने को मजबूर होना पड़ता है। इसके अलावा लगभग दस लाख टन खाद्य सामग्री, उचित भंडारण

के अभाव में सड़कर नष्ट हो जाती है। इसके अतिरिक्त पद्रंह से बीस प्रतिशत लोग अपना पेट तो भरते हैं पर उनके भोजन में लोहा, कैल्शियम, प्रोटीन, विटामिन ए और ई जैसे पोषक तत्वों की कमी पाई जाती है।

पर हमारे शरीर की ज़रूरतें क्या हैं?

हमारे शरीर को स्वस्थ रहने के लिए प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स, वसा (फ़ैट), फल, सब्ज़ियों, खनिज व विटामिन की आवश्यकता होती है। बच्चों, व्यस्कों व बुजुर्गों को अलग-अलग किस्म व मात्रा में भोजन व पोषक तत्वों की ज़रूरत होती है जिससे वे बढ़ सकें, संक्रमणों से अपना बचाव कर पाएं, पढ़-लिख सकें और जम कर मेहनत कर सकें।

विभिन्न स्रोतों से प्राप्त जानकारी व आंकड़े दर्शाते हैं कि भारत के बच्चों में अनीमिया या खून की कमी की दर 80 प्रतिशत है। लगभग 50 प्रतिशत महिलाएं व 60 प्रतिशत गर्भवती स्त्रियां भी खून की कमी से ग्रस्त हैं। ब्रेस्ट फीडिंग नेटवर्क ऑफ़ इण्डिया की निर्मला सेल्वम के अनुसार नवजात शिशु व बढ़ते बच्चों को स्वस्थ रहने के लिए खान-पान के निम्न पैमानों का ध्यान रखना चाहिए –

- जन्म के एक घंटे के भीतर स्तनपान की शुरूआत
- नवजात शिशु के लिए 6 माह तक केवल स्तनपान
- दो वर्ष या उससे अधिक समय तक स्तनपान
- छः माह के बाद स्तनपान के साथ-साथ पोषक आहार का सेवन

मां के दूध में वे सभी पोषक तत्व पाए जाते हैं जो शिशु के स्वास्थ्य के लिए लाभदायक हैं। स्तनपान शिशु को संक्रमण से बचाता है। मां का दूध फार्मूला दूध की तुलना में जल्दी पचने वाला तथा ताकत देने वाला होता है। कोलोस्ट्रम या प्रसव के बाद मां के पहले दूध में प्रोटिन खनिज व विटामिन की मात्रा अधिक होती है। मां के दूध में बच्चे के विकास में सहायक तत्व, एन्ज़ाईम, हारमोन व संक्रमण-बचाव कारक होते हैं। अक्सर देखा गया है कि मां का पोषण स्तर उसके दूध की क्वालिटी पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ता। बहुत अधिक कुपोषण होने पर दूध में प्रोटीन और वसा की मात्रा में थोड़ी बहुत कमी अवश्य होती है। लिहाज़ा स्तनपान कराने वाली स्त्रियों को पोषक आहार मिलना बहुत ज़रूरी है।

वयस्क औरतों व पुरुषों के लिए दिनभर में एक हज़ार कैलोरी पोषण महत्वपूर्ण हैं। हम पूरे दिन में शरीर के लिए ज़रूरी सभी पोषक तत्व या माइक्रो-न्यूट्रियंट्स पाने के लिए अलग-अलग प्रकार का भोजन करते हैं। नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ़ न्यूट्रिशन की डॉ. वीणा शत्रुघ्न के अनुसार दिन भर की एक हज़ार कैलोरी हासिल का सबसे सस्ता स्रोत निम्न खाने की चीज़ों से पाया जा सकता है।

आहार	मात्रा
चीनी	250 ग्राम
चावल	290 ग्राम
दाल	13 ग्राम
तेल	100 मि.ली.
आलू	1030 ग्राम
केला	870 ग्राम
दूध	1250 मि.ली.
अंडा	एक दर्ज़न
चिकन	1000 ग्राम
सूखे मेवे (बादाम काजू)	166 ग्राम

भौगोलीकरण व खान-पान संबंधी आदतें

आजकल लोगों के खान-पान की आदतों में बदलाव आ रहे हैं। मध्यम वर्ग व निम्न आय वाले घरों में भी हम पाते हैं कि बच्चों को नियमित रूप से बिस्कुट, डबल रोटी व शीतल पेय जैसे कोका कोला व पेप्सी दिए जाते हैं। जब मां-बाप व्यस्त हों तो भूख लगने पर बच्चों को 'मैगी' नूडल्स, चिप्स, कुरकुरे व अन्य तरह की खाने की चीज़ें परोस दी जाती हैं। इनसे हालांकि काम का बोझ ज़रूर कम होता है क्योंकि यह खाना फटाफट बन जाता है, इसे तैयार करने की प्रक्रिया भी बहुत आसान है। यह बच्चों की भूख तो शान्त कर देता है पर चूंकि इससे उन्हें कोई पोषक तत्व नहीं मिलते लिहाज़ा यह स्वास्थ्यवर्द्धक आहार की श्रेणी में नहीं आता।

हमारी दादी-नानी व हमारे पूर्वज क्या खाते थे जिससे वे स्वस्थ रहें? हमारे देश में हमेशा से विभिन्न प्रकार के फल, सब्ज़ियां व खाद्य पदार्थ उगाए जाते रहे हैं। उन इलाकों में भी जहां बारीश कम होती है और जहां की मिट्टी में संसाधनों की कमी होती है वहां भी गरीब किसान महिलाओं ने हमें दिखाया है कि वे अपना व अपने परिवारों का स्वास्थ्य बेहतर रख सकती हैं।

पोषक आहार का एक महत्वपूर्ण स्रोत है छोटे अनाज जैसे बाजरा, ज्वार, रागी, सांवां, कोरर, कोदों, कुटकी इत्यादि। अलग-अलग क्षेत्रों में इन अनाजों के नाम फ़र्क़ हो सकते हैं तथा पोषक तत्वों की मात्रा भी कम-अधिक होती है। पर यह सभी चावल से ज़्यादा पोषण प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए ज्वार में शरीर को ऊर्जा व मज़बूती देने वाला प्रोटीन और लोहा पाया जाता है। हर सौ ग्राम ज्वार में 10.4 ग्राम कैलशियम व 4.1 मिलिग्राम लोहा पाया जाता है।

इसी प्रकार रागी हड्डियों को सशक्त बनाती है व इसमें प्रोटीन व लोहा पाया जाता है। पर रागी धीरे-धीरे पचती है व विशेष रूप से डायबिटीज़ वालों के लिए उपयोगी है। ऊपर लिखें सभी छोटे अनाज के दानों में चावल की तुलना में अधिक प्रोटीन, खनिज, कैल्शियम व लोहा मौजूद होता है जिसकी एक व्यस्क शरीर को ज़रूरत होती है।

हो सकता है कि आपके स्थानीय बाज़ार व दुकानों में यह अनाज मिलते नहीं हो। ऐसे में आपको मांग करनी चाहिए कि यह उपलब्ध कराए जाएं। इन अनाज से आप तरह तरह के व्यंजन बना सकते हैं जिनमें रोटी, खिचड़ी, चावल की तरह उबालना, खीर, वड़ा, टिक्की, बाटी, लिट्टी, खाखरा या थेपला शामिल हैं। अगर आप शहर में रहते हैं तो पता करें कि पास के किस कस्बे या गांव में यह अनाज उपलब्ध हैं और फिर उन्हें वहां से खरीदें।

पोषक भोजन उपलब्ध हो और हम अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में इसे शामिल कर पाएं इसके लिए कुछ नई तैयारियां करनी होंगी। हमारे देश के कई हिस्सों में अनाज पैदा करने वालों और उपभोक्ताओं ने आपस में तय किया है कि वे वही अनाज पैदा करेंगे और खाएंगे जो कीटनाशकों व अन्य रसायनों से मुक्त हों। उदाहरण के लिए हैदराबाद की *डेकन डेवलपमेंट सोसाइटी और सेंटर फ़ॉर सस्टेनेबल एग्रीकल्चर* हर पखवारे और माह के अंत पर एक हाट लगाते हैं, जिसमें वे आसपास के गांवों में पैदा होने वाले अनाज और रसायन मुक्त फसल हैदराबाद शहर के मध्यम वर्गीय इलाकों में बेचने के लिए लाते हैं। यह हाट उन क्षेत्रों में भी लगाई जाती है जहां अधिकांश लोग गरीब या कम आय वाले हैं। हालांकि इन अनाजों की कीमत चावल से ज़्यादा ऊंची होती है पर आजकल बढ़ी हुई कीमतों के कारण इनको खरीदना अधिक फायदेमंद साबित हो रहा है क्योंकि इनमें पोषण की मात्रा अधिक है। ज़हीराबाद के ग्रामीण क्षेत्रों में *डेकन डेवलपमेंट सोसाइटी* ने कोओपरेटिव सोसाइटी भी खोली हैं जहां से गरीब लोग सस्ते दामों पर अनाज खरीद सकते हैं। किसान सहकारी भंडार को अपनी पैदावार भी उचित कीमत पर बेच सकते हैं।

स्थानीय पैदावार को अपने भोजन में शामिल करना एक अच्छी आदत है। साथ ही अलग-अलग तरह के अनाज व दानों को अपने आहार में इस्तेमाल करना भी सेहत के लिए फायदेमंद है। थोक विक्रेताओं से अनाज खरीदने में भी लाभ है। इस कार्य को सुचारू रूप से करने के लिए स्वयंसेवी संस्थाओं, स्वास्थ्य समूहों, यूनियन या जन संगठनों की सहायता ली जा सकती है। अगर आप शहर में रहते हैं और आपके घर में छोटा सा भी ज़मीन का टुकड़ा है तो आप इनमें कुछ सब्ज़ी या हर्ब पैदा कर सकते हैं। खासकर औरतों के लिए घर में कुछ पत्तेदार सब्ज़ियां उगाकर उन्हें अपने नियमित भोजन में इस्तेमाल करना स्वास्थ्य के नज़रिए से उपयोगी साबित हो सकता है।

औरतों में कम पोषण के लिए ज़िम्मेदार कारण

- *गरीबी*
- *जेंडर भेदभाव*
- *भोजन में पोषक तत्वों की कमी*
- *अपर्याप्त भोजन की मात्रा*
- *प्राकृतिक संसाधनों पर घटता नियंत्रण*
- *खाद्य सामग्री की बढ़ती कीमतें*
- *खाद्य सुरक्षा का अभाव*

आम सब्ज़ियां, खास फायदे

हमने पोषणयुक्त भोजन की बात तो बहुत बार की है। पर क्या आपने कभी सोचा है कि प्रकृति ने हमारे शरीर के विभिन्न हिस्सों को स्वस्थ रखने के लिए कौन कौन सी उपयोगी फल-सब्ज़ियां बनाई हैं? आईए एक नज़र डालकर देखें कि कौन सी सब्ज़ी शरीर के किस हिस्से के पोषण के लिए उपयुक्त है।

गाजर का एक गोल टुकड़ा हमारी आंखों की पुतली की तरह दिखता है और विज्ञान ने साबित कर दिया है कि गाजर खाने से आंखों की रोशनी बढ़ती है।

लाल-लाल **टमाटर** में चार कोठरियां होती हैं। ठीक इसी तरह दिल में भी चार कक्ष होते हैं और इसका भी रंग लाल है। शोध से पता चला है कि टमाटर में लाइकोपिन का भंडार होता है जो दिल व रक्त संचार के लिए बेहद उपयोगी है।

अंगूर के गुच्छे को ध्यान से देखें तो इसका आकार दिल की तरह लगता है। हर अंगूर रक्त कोशिका की तरह दिखता है। शोध से पता चला है कि अंगूर में हृदय और रक्त ओजस्वी तत्व हैं।

अखरोट का आकार दिमाग से मिलता-जुलता है, इसमें दो हिस्से होते हैं दायां-बायां। साथ ही अखरोट में भी ऊपरी व निचले कक्ष होते हैं जो हमारे दिमाग के अनुमस्तिष्क की तरह दिखते हैं। अखरोट के अंदर की झुर्रियां और तहें भी दिमाग की सिलवटों के समान होती हैं। और अब हमें पता चला है कि अखरोट का सेवन दिमाग की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए 'न्यूरॉन ट्रांसमीटर' विकसित करने में सहायक होता है।

राजमा आकार में गुर्दे की तरह है और इसको खाने से गुर्दों की कार्यकुशलता बरकरार रहती है।

सेलरी, श्वेतचीनी व बॉक चाय और इसी प्रजाति की सब्ज़ियों का आकार हड्डियों की तरह है। इन्हें खाने से हड्डियां मज़बूत होती हैं। इन सब्ज़ियों में 23 प्रतिशत सोडियम पाया जाता है और हड्डियों में भी सोडियम की मात्रा 23 प्रतिशत है।

ऐवोकाडो, बैंगन व नाशपाती यह गर्भाशय और ग्रीवा के स्वास्थ्य के लिए उपयोगी हैं तथा इनका आकार भी इन्हीं अंगों की तरह है। शोध के अनुसार हफ्ते में एक ऐवोकाडो खाने से शरीर का हारमोन संतुलन, प्रसव के बाद वज़न निर्धारित करने और ग्रीवा कैंसर की संभावना कम होती है। एक ऐवोकाडो को पूरी तरह पकने में नौ महीने लगते हैं और इन सभी सब्ज़ियों में चौदह हज़ार पोशक रासायनिक तत्व पाए जाते हैं।

अंजीर में बीजों की संख्या अधिक होती है तथा यह जाड़े में उगते हैं। इसके सेवन से पुरुषों में शुक्राणु संख्या में बढ़ोत्तरी होती है तथा यह पुरुषों में अनुर्वरता की रोकथाम में फायदेमंद है।

शकरकंदी अग्न्याशय (पैनक्रियास) के आकार में है और इसे डायबिटीज़ में उपयोगी पाया गया है।

ऑलिव (जैतून) अण्डकोश को स्वस्थ रखने में सहायक होता है।

संतरा, मौसमी व अन्य नीबू-वंशीय फल स्तनीय ग्रंथि के आकार में होते हैं तथा यह स्तनों व लसीका संबंधी क्रिया सुचारू रूप से चलाने में मददगार पाए गए हैं।

प्याज़ का आकार कोशिकाओं की तरह है तथा यह हमारे शरीर की कोशिकाओं को साफ रखता है। इसके पानी से आंखें साफ रहती हैं।

लहसुन भी प्याज़ की तरह शरीर की गंदगी बाहर निकालने में उपयोगी पाया गया है।

कविता

अपने ख़िलाफ़

स्नेहमयी चौधरी

वही करो
जो सब करते आए हैं
वही सुनो
जो सब सुनते आए हैं
वही बोलो
जो सब बोलते आए हैं।
तो क्या मैं
तोता हूं?

सब मुझे नाक की सीध का
रास्ता दिखाते हैं।
यदि नाक की सीध में
सीधा रास्ता न हो तो
क्या करो?

जब कोई नहीं बतला पाता तो
जो रास्ता मिलेगा
जो पंगडंडी जहां मुड़ेगी
उस पर ही तो चलना पड़ेगा।
चाहे पहुँचने पर वहां
पुराना बरगद मिले
या खुला आसमान।

तुम सबके ख़िलाफ़ दिखती मैं
अपने ख़िलाफ़ होती जा रही हूं।

औरत होने के नाते
जो सुना, देखा और सीखा है,
उसके खिलाफ़ जाना
अपने ख़िलाफ़ होना
क्यों लगता है?

वह नाचती है ताकि दूसरे जी सकें

कल्पना देउसकर

नीले रंग की भरतनाट्यम पोशाक पहने, आंखों में काजल लगाए, धड़कते दिल के साथ निकिता घीया स्टेज पर पड़े पर्दे से झांककर दशर्कों को देख रही थी। निकिता के लिए यह एक बहुत खास प्रोग्राम है। उसे नेशनल किडनी फाउन्डेशन ने यहां नृत्य पेश करने के लिए बुलाया है। नृत्य देखने वाले दर्शक गुर्दे (किडनी) के रोगों से ग्रस्त हैं। इनमें बुजुर्ग, युवा व बच्चे शामिल हैं। संगीत शुरू होता है, ढोल बजते हैं और दो साथी कलाकारों के साथ निकिता स्टेज पर अभिनय प्रस्तुत करती है। जैसे-जैसे नृत्य अपनी चरम सीमा पर पहुंचने लगता है निकिता के माथे और पीठ पर पसीना बहने लगता है। उसके सीने में भारीपन और टांगों में दर्द होता है। पर यहां तक आने के बाद निकिता रुक नहीं सकती। वे तमाम बीमार दर्शक उसकी ओर एकटक देख रहे हैं। वह उनका भरोसा नहीं तोड़ सकती। आखिर वह भी तो उनमें से एक है।

1986 की गर्मियों की बात है। पन्द्रह वर्ष की निकिता मुंबई में अपनी मौसी के पास छुट्टी बिताने गई थी। एक दिन मौसी ने देखा कि निकिता के चेहरे और हथेलियों पर पीलापन है। मौसी को लगा उसे पीलिया है और वह तुरन्त उसे डाक्टर के पास ले गईं। डाक्टर ने कुछ टेस्ट किए जिनमें उसका हीमोग्लोबिन बहुत कम पाया गया। कुछ और परीक्षण करने के बाद डाक्टर ने निकिता को फौरन अस्पलात में दाखिल होने के लिए कहा। निकिता को गुर्दे की बीमारी थी। उसके दोनों गुर्दे बिल्कुल न के बराबर काम कर रहे थे। ऐसी हालत में निकिता 'कोमा' में जा सकती थी इसलिए उसका फौरन इलाज किया जाना

ज़रूरी था। निकिता इस बीमारी से अनभिज्ञ थी — अक्सर गुर्दे के रोगियों को इस बीमारी का पता तब तक नहीं चलता जब तक यह बहुत अधिक फैल नहीं जाती।

अपने घर वापस आने पर निकिता की हालत बिगड़ती गई। वह दो घंटे से ज़्यादा स्कूल में बैठ नहीं पाती थी। उसे खाने-पीने पर भी रोक-टोक थी जिससे वह मायूस और चिड़चिड़ी हो गई थी। उसकी बीमारी का एक ही इलाज था — गुर्दे का बदलाव। उसकी मां इसके लिए तैयार भी हो गई थीं और उनका गुर्दा निकिता से मिल भी गया था। पर ऑपरेशन से पहले ही निकिता के दोनों गुर्दों ने काम करना बंद कर दिया। घर वाले फौरन उसे मुंबई ले आए जहां उसका ऑपरेशन हुआ और उसकी मां का गुर्दा उसे लगा दिया गया।

नया गुर्दा ठीक से काम करे इसलिए डॉक्टरों ने निकिता को स्टीरॉयड देने शुरू कर दिये। स्टीरॉयड के दुष्प्रभाव से उसका वज़न उन्नतालीस किलो से बढ़कर पैंसठ किलो हो गया तथा चेहरा सूज गया। मुंहासे और चेहरे पर बाल भी उग आए। निकिता के लिए जैसे सब खत्म हो गया था। वह अपने दोस्तों से कतराने लगी थी। उसे नृत्य का भी बेहद शौक था पर अब वह बिल्कुल नाचती नहीं थी। वह खुद को बदसूरत समझती थी।

फिर भी घरवालों के प्यार और हिम्मत ने उसे अपनी पढ़ाई जारी रखने का हौसला दिया। उसने बी. कॉम पूरा किया और टीचर ट्रेनिंग की। पांच साल तक उसने एक छोटे से स्कूल में बच्चों को पढ़ाया। पर फिर भी वह खुश नहीं थी। वह हंसने का प्रयास तो करती थी पर मन के अंदर वह हताश हो चली थी। कभी-कभी तो वह आत्महत्या करने के बारे में भी सोचती।

और एक दिन एक और सदमे ने उसे घेर लिया। उसके गुर्दे ने 1977 में दोबारा काम करना बंद कर दिया। अब जीने का एक मात्र तरीका था 'हेमोडायलसिस' जिसमें एक मशीन के द्वारा उसके खून की सफाई की जाती थी और शरीर का रसायनिक संतुलन बरकरार रखा जाता था। इस प्रक्रिया का खर्चा एक हज़ार रुपये प्रति सेशन था और इसे हफ्ते में तीन बार कराया जाता था। एक सेशन में पांच से छः घंटे लगते थे।

शुरू के कुछ हफ्तों में निकिता को हेमोडायलिसिस से बहुत कष्ट होता था। उसका रक्तचाप बढ़ जाता और वह सरदर्द और उबकाई झेलती। कई दफ़ा वह सड़क पर बेहोश होकर गिर पड़ती थी। उसकी आंखों में मोतियाबिंद भी हो गया था। निकिता बार-बार खुद से पूछती 'आखिर मैं ज़िन्दा क्यों हूं?'

निकिता की हालत देखकर उसके डॉक्टर ने उसे इलाज के लिए नाडियाड भेज दिया। यहां के इलाज से उसे फायदा पहुंचा और धीरे-धीरे उसका शरीर हेमोडायलिसिस से अभ्यस्त होने लगा। अस्पताल में निकिता की मुलाकात डॉ. मोहन राजपुरकर से हुई जो उसका इलाज कर रहे थे। डॉक्टर राजपुरकर को बहुत हैरानी हुई कि निकिता का मुख्य काम अपने स्वास्थ्य की देखभाल था। डॉक्टर राजपुरकर ने उसे कहा, 'तुम अब अच्छी भली हो, क्यों अपना वक्त बरबाद कर रही हो। अगर घर पर कोई काम नहीं है तो यहां अस्पताल में कुछ करो। हर वक्त अपनी बीमारी की चिन्ता मत करो।' निकिता नाराज़ हो गई और बोली, 'सलाह देना बहुत आसान है पर एक रोगी की ज़िन्दगी जीना बहुत मुश्किल। आप क्या जानें एक मरीज़ की क्या हालत होती है? पर डॉक्टर राजपुरकर ने उसे बताया कि वे खुद एक दिल की बीमारी के मरीज़ हैं। जब वह उनतीस वर्ष के थे तब उन्हें दिल का दौरा पड़ा था जिसके बाद उनके दिल की तीन-चार बार सर्जरी हुई। हां, जीवन की छोटी-छोटी खुशियों से महरूम होकर जीना कठिन है पर नामुमकिन नहीं। डॉक्टर के कठोर शब्दों ने निकिता के मन में एक

जोश भर दिया। उसने अपनी ज़िंदगी को एक मकसद देने का मन बना लिया।

उसने तय किया कि वह पुनः नाचेगी। सात वर्ष की उम्र से वह *दर्पण नाट्यशाला* में भरतनाट्यम सीख रही थी। पर बीमारी के कारण उसने नाचना बंद कर दिया था। अपनी एक सहेली की मदद से निकिता ने अपने गुरु बिजॉय शिवराम से सम्पर्क किया। शिवरामजी को भरोसा नहीं था कि एक बीमार लड़की को वह भरतनाट्यम का प्रशिक्षण दे पाएंगे और वह उसे निभा पाएगी। पर निकिता के दृढ़ विश्वास और सीखने की चाह ने उन्हे मोहित कर दिया। दो माह बाद निकिता ने डॉक्टर राजपुरकर से कहा कि वह अस्पताल के वार्षिकोत्सव में नृत्य पेश करना चाहती है।

डॉक्टर राजपुरकर बताते हैं "जब दोनों गुर्दे काम करना बंद कर चुके हों तब रोगी के लिए एक नॉर्मल जीवन जीना आसान नहीं है। वे जल्दी थक जाते हैं; हड्डियां कमज़ोर पड़ जाती हैं और खून बहना या चोट लगना आम बात होती है। पर मैने निकिता को प्रोत्साहित किया और उसके साथ-साथ खड़ा रहा जिससे ज़रूरत पड़ने पर उसकी मदद की जा सके।

निकिता का कार्यक्रम बहुत अच्छा रहा। मरीज़ों ने उसकी कला को बहुत सराहा। निकिता भी खुशी से सराबोर थी। नृत्य ने उसे एक ठहराव और दिशा दी थी। अपने गुरु के साथ उसने अन्य भरतनाट्यम कार्यक्रमों में हिस्सा लिया। अखबारों ने उसकी हिम्मत और कौशल की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

अपनी कामयाबी से निकिता ने एक और निर्णय लिया। अपनी कला के सार्वजनिक कार्यक्रम करके वह गरीब मरीज़ों के हेमोडायलिसिस के लिए पैसे जमा करेगी। काफी गरीब मरीज़ पैसे के अभाव में टेस्ट, इंजेक्शन और डायलिसिस नहीं करा पाते। कई बार रोगी बिना इलाज के मर जाते हैं। इस नेक इरादे में दोस्तों, परिवार वालों और समुदाय ने मदद की। बड़ी कम्पनियों की मदद से गुजरात के बाहर भी नृत्य के कार्यक्रय आयोजित किये गये। नवम्बर 1999 से आज तक निकिता साठ लाख रुपये जमा कर चुकी है जिससे लगभग दो सौ मरीज़ों की मदद की जा सकी है। कुछ लोगों के डायलिसिस खर्चों को कम कीमत पर किया जा सका है। नाडियाड की जलुबेन एक ग्वालिन है। अपनी दो हज़ार रुपये की मासिक आय पर वह हफ्ते मे दो बार डायलिसिस नहीं करा पा रही थी। पर निकिता की मदद से आज जलुबेन अपने पांच बच्चों की देखभाल कर पा रही है।

इसी तरह मदनलाल बोरा जो एक चाय की दुकान चलाते हैं, की सहायता की गई। अपने गुर्दे का ऑपरेशन कराने के लिए मदनलाल को बड़ी रकम की ज़रूरत थी। पर अगर एक बड़ी रकम बोरा को दी जाती तो काफी दूसरे मरीज़ों का इलाज रुक जाता। निकिता ने दोस्तों, परिवार वालों और अन्य साथियों की मदद से पचास हज़ार रुपये इकट्ठे किये जिनसे मदनलाल का ऑपरेशन किया गया। 2003 में निकिता ने बच्चों के इलाज के लिए एक अलग फंड चालू किया जिससे 140 बच्चों का नियमित इलाज किया जाता है।

यहां हम पुनः दोहराना चाहते हैं कि नाचने और इस कठिन मेहनत ने निकिता के ऊपर अपना प्रभाव डाला है। वह बताती हैं कि नृत्य करना उनके शरीर के लिए बहुत कष्टदायक है। एक बार उनके पेट में इतना तीव्र दर्द हुआ कि उन्हें दर्द रोकने के इंजेक्शन लगाने पड़े। दूसरी बार उन्हें भारी मासिक रक्तस्राव हुआ जो गुर्दे के मरीज़ों के लिए एक आम अनुभव है। इसके अलावा नृत्य कार्यक्रम के बाद वह ज़्यादा पानी नहीं पी सकती, सिर्फ़ एक आध घूंट ही ले सकती हैं। गुर्दे के रोगी ज़्यादा पानी या तरल पेय का सेवन नहीं कर सकते। इसके बावजूद वह कठिन से कठिन मुद्राएं करने से हिचकिचाती नहीं हैं क्योंकि वह भरतनाट्यम का सटीक नृत्य पेश करना चाहती हैं।

नृत्य ने निकिता में कई बदलाव भी किए हैं। एक चिड़चिड़ी, बिस्तर पर पड़ी रहने वाली लड़की आज उमंग से भरी और खुश है। वह नए-नए मौके तलाशती है। निकिता जानती है कि उसकी ज़िन्दगी आम लोगों की तुलना में छोटी होगी। पर जब तक वह ज़िन्दा रहेगी एक सकारात्मक और दूसरों की मदद करने वाली ज़िन्दगी गुज़ारेगी। "वह कहती हैं, मुझे लोगों की दया या हमदर्दी नहीं चाहिए, उनका जोश और साथ चाहिए जिससे मैं दूसरों में हिम्मत और ज़िन्दगी के प्रति लगाव भर सकूं।"

साभारः रीडर्स डाईजेस्ट जॉय
मई-जून 2008

स्तन कैंसरः कुछ महत्वपूर्ण जानकारी

यह आश्चर्यजनक ज़रूर है पर सच्चाई यही है कि हर तीन मिनट पर एक महिला में स्तन कैंसर पाया जाता है। औरतों को होने वाले रोगों में स्तन कैंसर दूसरे नम्बर पर आता है। विश्व स्वास्थ्य संस्थान के आंकड़ों के अनुसार सन् 2004 तक बारह लाख महिलाओं में स्तन कैंसर पाया गया।

शरीर के अन्य हिस्सों की तरह हमारे स्तन में भी कोशिकाएं (सेल) बनती हैं। इन कोशिकाओं की बढ़त और विश्राम को कोषाणु केन्द्र में पाए जाने वाले जीन्स संतुलित करते हैं। जब यह जीन्स सुचारू रूप से काम करते हैं तब कोशिकाओं के बढ़त और विश्राम का संतुलन बना रहता है। पर जब ये जीन्स किसी संक्रमण या अनियमितता से ग्रस्त होते हैं तब कोषाणु संतुलन बिगड़ जाता है और वे अनियंत्रित गति से बढ़ने लगते हैं जिसके फलस्वरूप कैंसर होता है। यानी स्तन कैंसर में स्तन कोशिकाएं अनियंत्रित रूप से बढ़ने लगती हैं।

स्तन कैंसर के कारणों के विषय में कोई विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है। पर शोध से पता चला है कि उम्र बढ़ने के साथ औरतों में इस कैंसर की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। इसके अलावा कुछ ऐसे कारण हैं जो स्तन कैंसर की गुजांइश बढ़ाते हैं। इसमें परिवार के अन्य सदस्यों में छोटी उम्र में स्तन कैंसर का इतिहास व तीस वर्ष की उम्र के बाद गर्भधारण या प्रसव महत्वपूर्ण हैं। जांच-पड़ताल से यह भी स्पष्ट हुआ है कि जो महिलाएं अधिक समय तक 'एस्ट्रोजिन' के प्रभाव में रहती हैं उनमें स्तन कैंसर होने की संभावना अधिक होती है। इसमें 12 वर्ष से पहले मासिक धर्म, 55 वर्ष के पश्चात रजोनिवृति, हारमोन बदलाव थेरेपी और बांझपन ऐसे कारण हैं जिनमें शरीर पर एस्ट्रोजिन का प्रभाव अधिक होता है। स्तन कैंसर अधिकांश समय उन स्तनों में विकसित होता है जिनमें लोब्यूलर (पालिमय) व डक्टल (नलिका) टिशु (यानी अधिक घनन वाले टिशु) की मात्रा अधिक होती है। यानी जिन स्तनों में अधिक फैटी (मांसल) टिशु होते हैं उनमें इस कैंसर के होने का कम खतरा रहता है। इसके अलावा जब स्तन के टिशु का घनन अधिक होता है तब मैमोग्राम के ज़रिए अनियमिताओं को ढूंढ पाना भी कठिन होता है। इसके अलावा तीस वर्ष की उम्र से पहले रेडियेशन थेरेपी भी स्तन कैंसर होने की संभावना बढ़ाती है।

पर यह भी हो सकता है कि जिस महिला को स्तन कैंसर हो उस पर इनमें से कोई कारण लागू न हों।

स्तन कैंसर के कुछ लक्षण

स्तन कैंसर की शुरूआत में कोई दर्द या प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाले कारक नहीं होते। पर जैसे-जैसे यह फैलता है शरीर में कुछ बदलाव होते हैं जिन पर ध्यान देकर आप स्तन कैंसर की पहचान कर सकती हैं। इनमें विशेष हैंः

- स्तन या बगल में गांठ, गिल्टी या सूजन
- स्तन के आकार/बनावट में परिवर्तन
- स्तन की खाल में खिंचाव, लालिमा या सुकड़न
- स्तन से किसी भी प्रकार का स्राव या निपल का उलट जाना

इस तरह के कोई भी संकेत होने पर अपने डॉक्टर से जांच कराएं। हो सकता है आपको कैंसर न हो पर सही समय पर जांच करा लेना फ़ायदेमंद होगा।

स्तन कैंसर की जांच के लिए *मैमोग्राफ़ी* व *अल्ट्रा-सोनोग्राफ़ी* जैसी तकनीकें उपलब्ध हैं। इसके अलावा डॉक्टर गांठ को दबाकर भी जांच कर लेते हैं।

स्तन कैंसर के इलाज़ के लिए दो प्रकार की सर्ज़री की जाती है। पहली *मैस्टिकटॉमी* जिसमें स्तन के सभी टिशु निकाल दिए जाते हैं। दूसरी सर्जरी है *लम्पिकटॉमी*

जिसमें ट्यूमर व उसके आसपास के संक्रमित टिशु निकाले जाते हैं।

सर्जरी के अलावा *कीमोथेरेपी* भी एक तरीका है जिससे इलाज किया जाता है। *कीमोथेरेपी* के ज़रिए कैंसर के शरीर के अन्य हिस्सों में फैलने की संभावना को दूर किया जाता है। यह एक नियमित प्रक्रिया है जिसका प्रभाव पूरे शरीर पर पड़ता है। *कीमोथेरेपी* का शरीर के रोगी कोषाणु के साथ-साथ रक्त, मुंह, नाखून, नाक, बाल, अंतड़ियों व योनि की कोशिकाओं पर भी विपरीत असर पड़ता है जिससे शरीर में कमज़ोरी, थकान, बालों का गिरना इत्यादि प्रभाव देखे जाते हैं।

तीसरा उपाय है *रेडियोथेरेपी* जो स्तन कैंसर की दोबारा जड़ पकड़ने की संभावना को 50 प्रतिशत तक कम करती है। इसके भी दुष्प्रभाव होते हैं पर यह प्रभाव केवल उस क्षेत्र तक सीमित रहते है जहां इसका उपयोग किया गया हो।

याद रखिए स्तन कैंसर का पता अगर शुरूआत में ही चल जाए तो इसका पूर्णतः इलाज संभव है।

स्वास्थ्य के नज़रिए से औरतों के लिए ये छः टेस्ट बहुत ज़रूरी हैं। इन्हें सही समय पर कराने से आप कुछ ऐसी बीमारियों से अपना बचाव कर पाएंगी जिन्हें 'साइलेंट किलर' का नाम दिया गया है। यानी इन बीमारियों का पता हमें तब चलता है जब ये शरीर में फैल जाती हैं।

- **स्तन परीक्षणः** चालीस वर्ष की उम्र के बाद साल में एक बार मैमोग्राम या स्तन परीक्षण कराना अच्छा है। अगर आपके परिवार में किसी को स्तन कैंसर हुआ है तो यह परीक्षण चालीस वर्ष से भी पहले कराना उचित रहेगा।
- **कॉलेस्ट्रॉल चैकः** पैतांलीस वर्ष का होने पर साल में एक बार कॉलेस्ट्रॉल चैकअप कराना चाहिए। अगर आप सिगरेट पीती हैं या फिर आपको डायबिटीज़ या कोई दिल की बीमारी है तो बीस साल का होने के बाद चैकअप ज़रूरी है।
- **ब्लड प्रेशरः** हर दो साल में एक बार ब्लड प्रेशर या रक्तचाप चैक कराना सेहत के लिए फायदेमंद होता है। यह प्रक्रिया अट्ठारह वर्ष का होने पर शुरू की जानी चाहिए।
- **डायबिटीज़ परीक्षणः** अगर आप में उच्च रक्तचाप, कॉलेस्ट्रॉल मात्रा में तेज़ी या किसी रोग का पारिवारिक इतिहास है तो खून में 'शुगर' लेवल का परीक्षण नियमित रूप से किया जाना चाहिए।
- **पैप स्मीयर परीक्षणः** पैप स्मीयर टेस्ट से 'सर्विकल' यानी ग्रीवा कैंसर की पहचान होती है। अगर आप एक सक्रिय यौनिक जीवन व्यतीत कर रही हैं तो इक्कीस साल की होने पर वर्ष में एक बार यह परीक्षण करा लें।
- **बोन डेन्सिटी टेस्टः** चालीस वर्ष के ऊपर वाली औरतों को हड्डियों के घनन की जाँच करने वाला यह परीक्षण सालाना कराना चाहिए, खासकर अगर उनका वज़न लगातार घट रहा हो या फिर वे धूम्रपान करती हों।

कृष्णा कैंसर केयर चैरिटेबिल इन्स्टीट्यूट में स्तन कैंसर की जांच व इलाज की सुविधाएं बहुत ही रियायती दर पर उपलब्ध हैं। आप यहां पर सम्पर्क कर सकती हैं और स्तन कैंसर पर जानकारी भी हासिल कर सकती हैं।

कृष्णा ब्रेस्ट कैंसर केयर चैरिटेबिल इंस्टीट्यूट ट्रस्ट
ग्राउन्ड फ्लोर, टाईम्स स्क्वेयर सुशांत लोक-I, गुड़गांव-122002
टोल फ्री नम्बर 1800-102-2442 (एयरटेल नम्बर से)
अन्य टेलिफोन सेवाः 91-124-4719990
ईमेलः info@krishnabcc.com

तनाव

जुही जैन

क्या आप जानती हैं कि तनाव, टेंशन या स्ट्रैस स्वास्थ्य का एक मुद्दा है? आजकल भाग दौड़ की ज़िन्दगी में हम अक्सर तनावग्रस्त रहते हैं। हम बहुविध, दीर्घकालीन और अस्पष्ट तनावों से घिरे रहते हैं और इनको तुरन्त हल करना हमारे बस में नहीं होता। कई दफ़ा तो हमें तनाव का कारण भी साफ़ दिखाई नहीं देता। पर क्या आप जानती हैं कि अगर हमारा शरीर लम्बे दौर तक तनावग्रस्त रहेगा तो शरीर की रोगों से लड़ने की शक्ति पर बुरा असर पड़ेगा। इसके अलावा तनाव में रहने से अल्सर, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग और कभी-कभी कैंसर तक होने की संभावना बढ़ जाती है।

तनाव के कुछ मुख्य कारणः

- आर्थिक असुरक्षा
- नौकरी
- किसी प्रियजन या निकट संबंधी की मृत्यु
- रिश्तों में उतार-चढ़ाव
- पारिवारिक समस्याएं
- गर्भावस्था
- खान-पान में कमी
- घर बदलना
- वर्ग, जाति, खूबसूरती, शारीरिक विकलांगता के आधार पर भेदभाव
- प्रदूषण
- जंग या जंग का खतरा

औरतों में तनाव के कुछ खास कारणः

- घर-नौकरी व देखभाल की ज़िम्मेदारी का बोझ
- यौन दुर्व्यवहार व हिंसा
- बच्चों की ज़िम्मेदारी, एकल मां
- "परफेक्ट" होने का दबाव
- आर्थिक तंगी
- अपने मन का न कर पाने का बोझ
- अकेलापन/दोस्तों का अभाव

अत्यधिक तनाव के लक्षणः

- सरदर्द
- कमर, गर्दन और पीठ दर्द
- घबराहट, बेचैनी, अनमनापन
- नींद न आना
- सर्दी, जुकाम, बुखार या अन्य मौसमी बीमारियों को झेलने की कम शक्ति
- चिड़चिड़ाहट, उदासीनता
- अचानक वज़न बढ़ना
- भूख न लगना या ज़्यादा भूख लगना
- हाथ पैर ठंडे पड़ना
- पेट दर्द, दस्त, दांत दर्द आदि
- पेट में भारीपन

ऊपर लिखे कारण और लक्षण तनाव पहचानने में हमारी मदद कर सकते हैं। पर इनके अतिरिक्त कई और एहसास होते हैं जिनसे हम पहचान सकते हैं कि हम तनावग्रस्त हैं। हमें चाहिए कि हम अपने आप से कुछ सवाल पूछें, मसलनः

- क्या मैं संतुलित महसूस कर रही हूं?
- क्या मेरी ज़िन्दगी में कुछ महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं?
- क्या मेरी कुछ आदतें अस्वास्थ्यकर हैं?

साभार: लाफिंग मैटर्स, जागोरी, चित्र: बिंदिया थापर

- क्या मुझे कोई ऐसी परेशानी है जिसके बारे में मैं बहुत समय से लगातार सोचती रहती हूं?

इन कुछ सवालों के जवाब ढूंढ़ने से आप खुद को अच्छी तरह जान पाएंगी। आप अपने खाने, पीने, पहनावे पर ध्यान दें। सोचें कौन सी चीज़ या काम करने से आपको खुशी मिलती है? कौन सी आदतें ऐसी हैं जिन्हें छोड़ने से आप हल्का महसूस करेंगी? हो सकता है आप अपने तनाव का कारण पहचान लें पर फिर भी उसका कोई हल न दिखे। पर कम से कम आपने जाना तो सही कि आपके तनाव की वजह क्या है। देर-सवेर उसका हल भी निकल ही आएगा।

हम तनाव के प्रभाव कम करने के लिए व्यायाम, ध्यान, मालिश, सेहतमंद भोजन आदि उपाय कर सकते हैं। अपनी रोज़ की दिनचर्या में कुछ वक्त सिर्फ़ अपने लिए निकालना ज़रूरी भी है और फ़ायदेमंद भी। इस थोड़े से समय में आप अपनी पसन्द का कुछ करें, संगीत सुनें, किताब पढ़ें, या सिर्फ़ आराम से चुपचाप बैठकर पेड़-पौधे, आसमान या शून्य को निहारें। ऐसा करने से आप तरोताज़ा महसूस करेंगी।

कुछ लोगों का मानना है कि घर में पालतू जानवर होना भी तनाव कम करता है। विशेषज्ञों ने तो यहां तक कहा है कि जिन घरों में पालतू जानवर होते हैं वे लोग ज़्यादा समय तक जीवित रहते हैं।

पैदल चलना, घूमना या फिर दोस्तों से बातें करना, ये सब भी तनाव को कम करने में सहायता करते हैं। इसके अलावा खुलकर हंसना, खुश रहना हमारी सेहत के लिए बहुत लाभदायक होता है। आप चाहे कुछ भी तरीका अपनाएं, याद रखें आप बहुत कीमती हैं। अपनी ज़िन्दगी सुख से गुज़ारें, बेकार की तकलीफ़ों को दूर करने के यथासंभव प्रयास करें। तभी तो जीने का मज़ा है।

तनाव दूर करने के कुछ उपायः

- तनाव के कारण को पहचानें। एक बार जब कारण पता चल जाएगा तो हल ढूंढने में मदद मिलेगी।
- अपने आप पर भरोसा करें। समझें कि तनाव से आप भावनात्मक रूप से किस तरह जूझती हैं।
- एक बार इन सवालों का हल निकालने के बाद आप एक अंदाज़ा लगाएं कि तनाव दूर करने के लिए आपको अपने माहौल और व्यवहार में कौन-कौन से बदलाव करने होंगे। आपको यह भी आंकना होगा कि इन बदलावों में कौन से संभव हैं।
- सच्चाई और डर में भेद करें। आप सिर्फ़ यथार्थ से जूझ सकती हैं, अनजाने डर से नहीं।
- तनाव दूर करने में अनिश्चितता और अपनी सीमाओं को ध्यान में रखें।
- हालात की सीमाओं को भी समझें।
- अपनी खुशी, दौलत और सुख की दूसरों से तुलना कभी न करें।
- दोस्तों, रिश्तेदारों से सलाह-मशविरा, बातचीत करने से हिचकिचाएं नहीं।
- आलोचनात्मक, नाम धरने वाले लोगों से दूर रहें। सकारात्मक, खुशगवार लोगों की संगति में रहें।
- समय की पाबंदी और आराम करना सीखें।
- अपनी कीमत पहचानें। अपनी इज़्ज़त करें।

आधुनिक उपकरण और हमारी सेहत

सीमा श्रीवास्तव

तकनीक का ज़माना है और आज शायद ही हमारे जीवन का कोई ऐसा कोना होगा जहां तकनीक की सुविधायें व सहुलियतें हमें अपने होने का एहसास न कराती हों। सुविधाएं तकनीक का एक पहलू है मगर ज़्यादातर स्थितियों में इन सहुलियतों का दूसरा पक्ष हम नज़रअंदाज़ कर जाते हैं जो अपने साथ हमारी सेहत, जीवन शैली और पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने वाले कारक लेकर आते हैं। कुछ ऐसे ही नुकसान का सामना हमें सेहत से जुड़ी तकनीकियों का लाभ उठाते वक्त भी करना पड़ता है।

एक तरफ तो हमें यह सच्चाई देखने को मिलती है कि 70 से 80 प्रतिशत लोगों को स्वास्थ्य सुविधाएं उनकी आर्थिक तंगी व सरकारी सुविधाओं की लचर हालत के कारण नसीब नहीं हो पातीं। दूसरी ओर 'हेल्दी' या स्वस्थ रहने के नये-नये नुस्खों की आज़माईश का दौर मध्यवर्गीय परिवार में बहुत तेज़ी से फैल रहा है। ऐसा नहीं है कि मैं शरीर और मन को स्वस्थ रखने के ख़िलाफ़ हूं या लोगों का अपनी सेहत के प्रति रूझान सही नहीं मानती। परन्तु मेरा मानना है कि 'फिटनेस' के नाम पर जो बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद फैल रहा है उसकी रोकथाम ज़रूरी है।

वक्त बदल रहा है, लोग अपने सेहत और स्वास्थ्य की जरूरतों के प्रति जागरूक हो रहे हैं, खासतौर पर यह जागृति शहरी क्षेत्रों और कस्बों में ज़्यादातर देखने को मिल रही है। यह एक सकारात्मक सूचक है परन्तु इसका व्यवसायीकरण बहुत घातक है। बाज़ार में नित दिन नई स्वास्थ्य विधियों, दवाइयों और उपकरणों का बोलबाला है जिनका मक़सद सिर्फ़ और सिर्फ मुनाफ़ा है। हर कोई अपने 'सामान और विधियों' को बेहतर बताता है। परेशानी सिर्फ़ यह नहीं है कि ये 'सामान और विधियां' बेहतर परिणाम का दावा करती हैं, बल्कि इस बात से है कि सभी विधियां 'यही तरीका सही है' की पैरवी ज़ोर-शोर से करके लोगों को गुमराह करती हैं।

आज के दौर में, खासतौर पर युवा वर्ग में सेहतमंद का पर्याय शारीरिक सुडौलता और सुन्दरता हो गई है। और इस गठे हुए खूबसूरत सांचे को पाने की होड़ में बाज़ार में उतरी हर तकनीक के पीछे होना आम चलन हो गया है। चूंकि मामला सौंदर्य का है तो बाज़ार का खास रूझान उन उपकरणों पर है जिसकी उपभोक्ता महिलायें हैं। ये उपकरण यह भी गारण्टी देते हैं कि घर बैठे/टीवी देखते अपना घरेलू काम निपटाते हुए, खासतौर से महिलायें इसका लाभ उठा सकेंगी। 'ब्यूटीपार्लर और हेल्थ केयर' की दूरी मिट गई है। शरीर की त्वचा कोमल हो, जवान हो, शरीर सुडौल हो इत्यादि इत्यादि की देखरेख ये दुकानें बखूबी कर लेती हैं।

मोटापा घटाना भी फिटनेस का पर्याय बन गया है। आप स्वयं ही सोचकर देखिए करीब दर्ज़न भर ऐसे उपकरण बाज़ार में आ गए हैं जो बहुत कम समय में मोटापा घटाने और सुडौल शरीर पाने की बात करते हैं। इनकी कीमत दो हज़ार से पन्द्रह हज़ार तक की है। अब 'इन्सटेंट' (तुरंत) लाभ की ललक में लोग पानी की तरह पैसे बहा रहे हैं। एक से लाभ नहीं तो दूसरे पर, दूसरे से नही ंतो अन्य किसी पर, सही मशीन की तलाश में पैसे खर्च करने का सिलसिला जारी रहता है। इस चक्कर में न तो इतना समय होता है कि इन आधुनिक तकनीकियों की बारीकी से जांच की जाए, और न ही इस बात की परवाह होती है कि लम्बे समय में इसके क्या हानिकारक प्रभाव होंगे।

आपने घर बैठे 'जॉगिंग' (तेज़ तेज़ चलना) के बारे में तो सुना होगा। आजकल लेटकर 'वॉक' करने की मशीन भी आ गई है। पैरों में मशीन लगाकर लेट जायें, आंखें

बंद करें और घर बैठे बैठे पहुंच जाएं कम्पनी बाग की सैर करने। सैर करना सिर्फ़ मांसपेशियों और दिल की गति के संतुलन की बात नहीं अपितु यह एक जीवन शैली है। सैर को निकलना, लोगों से बातचीत, कुदरत के करीब आकर शांत वातावरण में उसके उन अंशों को महसूस करना जो दिनभर की चिल्लपों में गुम हो जाते हैं। क्या हमें घर बैठे इस वॉकर से ये सभी फायदे मिल सकते हैं?

दूसरी ओर विद्युत तरंगों से मोटापा कम करने के लिए एक और उपकरण है जिसका चलन जोरों पर है। बिजली में लगाया और शरीर में कंपन शुरू। यह उपकरण मुझे दिमागी इलाज की इलैक्ट्रिक शॉक पद्धति की याद दिलाता है जिसे हम किसी हद तक सही नहीं मानते और बहुत मजबूरी की स्थिति में ही इसका प्रयोग किया जाता है। तो फिर यह कम्पन पद्धति हमारे शरीर के लिए कैसे लाभप्रद हो सकती है? गंभीर बात यह है कि इसका शरीर पर बेहद हानिकारक असर होता है। रक्तचाप, उत्तेजना और सांस उखड़ना जैसे तात्कालिक हानिकारक असर देखने को मिलते हैं। इस प्रक्रिया में गैर प्राकृतिक रूप से उत्पन्न की गई ऊर्जा से शरीर के सेल (तंतु) भी क्षीण हो जाते हैं।

इस आधुनिक तकनीक के बाज़ारवादी दौर में हमारी पारम्परिक ज्ञान की पद्धतियां, जो सीधे प्रकृति से जुड़ी थीं कहीं खोती चली जा रही हैं। ज्ञान की जगह पूंजी का महत्व अधिक हो गया जो लोगों के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ कर रहा है। कभी कभी स्वस्थ्य रहने का ये सारा खेल बहुत भयावह सा जान पड़ता है। लगता है कि इन सब में गुम होकर हम अपने आने वाली पीढ़ी के भविष्य को किसी गहरे अन्धकार में ढकेल रहे हैं। इसलिए यह बहुत ज़रूरी है कि किसी भी उपकरण का इस्तेमाल करने से पहले उसकी उपयोगिता और हानिकारक असर को जांच लें। कोई भी दवाई लेने से पहले अपने डॉक्टर से सलाह कर लें। अपने को सेहतमंद रखने के लिए ज़्यादा से ज़्यादा कुदरती विकल्पों को अपनाएं तो ही अच्छा है।

कविता

एक द्वार

स्नेहमयी चौधरी

मुझे क्या चाहिए?
खुला नीला आकाश

और क्या चाहिए?
दूर तक फैली धरती

बस, और क्या?

दूर, पर उन दोनों से
मिलकर बना क्षितिज

और तो कुछ नहीं?

नहीं-नहीं, अभी और चाहिए:
एक द्वार
जो खुलता चला जाए
खुलता चला जाए
खुलता
खुलता।

लेख

चित्र: सौम्या अग्रवाल, कृति टीम के लिए

स्त्री जननांग विकृतिकरण

सुमन बिष्ट, सौम्या अग्रवाल, आंचल कपूर

जब मेरा ख़तना हुआ तब मैं 10 साल की थी। मेरी दादी ने बताया था कि मुझे किसी अनुष्ठान के लिए नदी पर ले जाया जा रहा है। मैं तो बिल्कुल मासूम थी। लोग मुझे ऐसे पुचकार कर ले गए जैसे भेड़ को कत्लखाने में ले जाते हैं। जैसे ही मैं उस गुप्त झाड़ी में घुसी, कोई मुझे बहुत अंधेरे कमरे में लेकर चला गया। वहां उन्होंने मेरे सारे कपड़े उतार दिए व मेरी आंखों पर पट्टी बांध दी। इसके बाद दो औरतें मुझे ऑपरेशन की जगह ले गईं। मुझे जबरन पीठ के बल लिटा दिया गया।... मेरी चीखें दबाने के लिए मेरे मुंह में कपड़ा ठूंस दिया गया था पर बेहोशी की कोई दवा नहीं दी गई। इसके बाद पहले उन्होंने मेरे बाल साफ़ किए। ऑपरेशन के दौरान मैंने बहुत हाथ-पैर पटके। दर्द भयानक और बर्दाश्त से बाहर था। इस मारपीट में मुझे बहुत सारे घाव आए और काफ़ी खून बह गया। ऑपरेशन करने वाली सारी औरतें शराब के नशे में धुत्त थीं। ... मेरा ख़तना एक भोथरे पतले चाकू से किया गया था। ऑपरेशन के बाद किसी ने भी चलने-फिरने में मुझे सहारा नहीं दिया। मैं जब भी पेशाब करना चाहती, मुझे सीधे खड़े रहने के लिए मजबूर किया जाता था। इस तरह पेशाब पूरे घाव पर फैल जाता और फिर से दर्द की लहर उठने लगती। कई बार मैं सिर्फ़ इसी भयानक दर्द की वजह से पेशाब रोक लेती थी। खतना होने के बाद संक्रमणों से बचाव के लिए मुझे कोई एंटी-बायॉटिक दवाई नहीं दी गई। मेरा काफ़ी खून बह जाने से मेरे शरीर में खून की कमी हो गई थी, पर किसी ने परवाह नहीं की। मैं लंबे समय तक गंभीर योनि संक्रमणों से जूझती रही।

(हौना कोरोमा, सिएरा लियोन एमनेस्टी इंटरनेशनल वेबसाईट)

हौना कोरोमा की आपबीती अपने आप में कोई अलग नहीं है। दुनिया भर में हर रोज़ तकरीबन 6,000 लड़किया/औरतें किसी न किसी किस्म के स्त्री जननांग विकृतिकरण (एफ़जीएम) की भीषण यंत्रणा झेलती हैं।

एफ़जीएम यानी *फीमेल जेनिटल म्यूटीलेशन* या स्त्री जननांग विकृतिकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे स्त्री ख़तना या *फीमेल सरकमसीज़न* भी कहा जाता है। पर यहां हमने 'विकृतिकरण' शब्द का जानबूझकर इस्तेमाल किया है ताकि इस प्रथा की भयानकता को रेखांकित किया जा सके। जब 'स्त्री ख़तना' शब्द का इस्तेमाल किया जाता है तो लोग फ़ौरन ही इसे पुरुष ख़तना के साथ जोड़कर देखने लगते हैं जो कि सही नहीं है। ये दोनों अलग-अलग बातें हैं। इस

मशहूर नारीवादी नवाल-एल-सादावी के शब्दों में, "ख़तना का चलन इस मान्यता पर आधारित है कि लड़की के बाहरी जननागों के कुछ हिस्सों को ख़त्म कर देने से उसकी यौन इच्छा को कमज़ोर किया जा सकता है, जिससे किशोरावस्था में उसके कौमार्य और इस तरह उसकी अस्मिता की ज़्यादा आसानी से रक्षा की जा सके। पुराने ज़माने में औरतों के लिए बनाए जाने वाले हरम में भी जो पुरुष और नौकर-चाकर होते थे उन्हें नियंत्रित करने के लिए उनका बधियाकरण कर दिया जाता था, जिससे वे हिजड़े बन जाते थे।"

तुलना में स्त्री जननांगों की काट-छांट के कारण स्त्री की सेहत और कई बार जीवन के लिए पैदा होने वाले ख़तरों की गंभीरता नज़रअंदाज़ हो जाती है।

इनफ़िब्युलेशन (Infibulation) या फ़ेरोनिक ख़तना (Pharaonic Circumcision) एफ़जीएम का सबसे जघन्य रूप है। इसमें टिटनी (क्लीटोरिस) के साथ-साथ लघु भगोष्ठ (Labia Minor) और वृहत् भगोष्ठ (Labia Majora) को भी काट कर निकाल दिया जाता है। इस प्रक्रिया को क्लिटॉरीडेक्टॉमी (Clitoridectomy) कहा जाता है। इसके बाद जो क्षत-विक्षत सतह बचती है उसे टांके लगाकर सिल दिया जाता है। इससे योनि के ऊपर एक परत चढ़ जाती है। पेशाब और मासिक स्राव के लिए उसमें सिर्फ़ एक छोटा-सा छेद छोड़ दिया जाता है। एफ़जीएम का दूसरा स्वरूप वह है जिसमें टिटनी और लघु व वृहत् भगोष्ठ को समूचा साफ़ नहीं किया जाता बल्कि उनके कुछ हिस्सों को काट कर निकाल दिया जाता है। इसके बाद योनि के दोनों तरफ़ की सतह को सिल दिया जाता है जिससे केवल कुछ जगह खुली रह जाती है। कुछ संस्कृतियों में सुहागरात के समय पति दुधारी कटार से इन टांकों को खोलता है। अगर पति लंबी यात्रा पर बाहर जा रहा है तो भी योनि द्वार को सिल कर दोबारा बंद किया जा सकता है। सुन्ना एफ़जीएम की सबसे कम हिंसक किस्म मानी जाती है। इसमें केवल टिटनी के ऊपरी सिरे को काटा जाता है।

एफ़जीएम लड़की के पैदा होने से लेकर उसकी पहली गर्भावस्था तक कभी भी किया जा सकता है। आमतौर पर एफ़जीएम चार साल से आठ साल की उम्र के बीच किया जाता है। कई संस्कृतियों में गर्भावस्था से पहले ऐसा करना इसलिए ज़रूरी माना जाता है क्योंकि प्रसव के समय बच्चे का मां की शिश्निका से छू जाना बच्चे के लिए प्राणघातक माना जाता है।

माना जाता है कि एफ़जीएम की शुरूआत अफ़्रीका से हुई थी। यह प्रथा उप-सहारा व पूर्वोत्तर अफ़्रीका के 28 देशों में कई हज़ार साल से चली आ रही है। किसी देश में यह प्रथा बहुत फैली है तो कहीं इसका चलन कम है। युगांडा में केवल 5 प्रतिशत जबकि सोमालिया में 98 प्रतिशत लोग इस प्रथा में विश्वास रखते हैं। छोटे-मोटे पैमाने पर यह एशिया के कई देशों मसलन इंडोनेशिया, मलेशिया, भारत, श्रीलंका, मध्य-पूर्वी में मिस्र, ओमान, यमन और संयुक्त अरब अमीरात आदि में भी मौजूद है।

हालांकि एफ़जीएम बहुत सारे इस्लामिक देशों में प्रचलित है लेकिन यह कोई इस्लामिक प्रथा नहीं है। यह एक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रथा है जिसे बहुत सारे मुसलमान, ईसाई, यहूदी और परंपरागत अफ़्रीकी धर्मों के अनुयायी अपनाए हुए हैं।

एफ़जीएम को मानने वाले समुदाय इस प्रथा को सही ठहराने के लिए तरह-तरह के तर्क देते हैं। ये तर्क आमतौर पर संस्कृति और परंपराओं के खोल में पेश किए जाते हैं। कुछ संस्कृतियों में इसे लड़कपन की शुरूआत का एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान माना जाता है जबकि कुछ समुदाय इसे साफ़-सफ़ाई के लिए ज़रूरी मानते हैं। कुछ समुदायों का मानना है कि यदि टिटनी को न काटा जाए तो वह बढ़कर बहुत बड़ी हो सकती है जबकि कुछ लोगों का मानना है कि यदि पुरुष का शिश्न स्त्री की टिटनी से छू जाता है तो पुरुष की मृत्यु हो सकती है। यह भी कहा जाता है कि एफ़जीएम से प्रजनन क्षमता बढ़ती है। बहरहाल, तर्क चाहे जो भी दिया जाए, मोटे तौर पर यही लगता है कि यह औरत के यौनिकता को नियंत्रित करने और उसके कौमार्य को बचाए रखने और इस तरह उसकी 'इज़्ज़त' को नियंत्रित रखने की चाह से उपजी हुई प्रथा है।

जिन औरतों का ख़तना नहीं हुआ है उन्हें जीवन साथी ढूंढने में मुश्किल पेश आती है क्योंकि उन्हें कम वफ़ादार माना जाता है। कुछ लोगों का मत है कि यह औरत के

व्यक्तित्व को 'शांति' प्रदान करता है और स्त्री समलैंगिकता को भी रोकता है। एफ़जीएम के हिमायती दलील देते हैं कि एड्स का ख़तरा ख़तनारहित औरतों के सामने ज़्यादा रहता है क्योंकि वे ज़्यादा यौन सक्रिय होती हैं। यह भी माना जाता है कि स्त्री देह में 'पुरुष अंग' मानी जाने वाली टिटनी और भगोष्ठों को हटा देने से लड़की के औरताना गुण यानी उसका दब्बूपन और आज्ञाकारिता बढ़ जाती है।

एफ़जीएम की प्रथा औरतों को एक स्वस्थ यौन एवं प्रजननशील जीवन का आनंद लेने के अधिकार से वंचित कर देती है। योनि में असंख्य तंत्रिकातंत्र होते हैं जो उत्तेजित होने पर प्रबल यौन कामना पैदा करते हैं। टिटनी का ख़तना होने पर औरत के लिए आनंद की अनुभूति कम हो जाती है या पूरी तरह नष्ट हो जाती है। हमारे समाज में औरतों को विस्तार से ये निर्देश दिए जाते हैं कि उन्हें अपने पति के आनंद और संतुष्टि के लिए क्या-क्या करना है। लेकिन, उन्हें यह कभी नहीं बताया जाता कि अपनी संतुष्टि के लिए वे क्या करें। अपनी यौनिकता को भोगने का औरतों का अधिकार नगण्य है। यहां तक कि एफ़जीएम के ख़िलाफ़ लड़ाई में भी ज़्यादा ज़ोर इस बात पर दिया जाता है कि इससे औरत के स्वास्थ्य के लिए क्या-क्या ख़तरे हैं। यौन आनंद का मुद्दा उतना महत्वपूर्ण नहीं माना जाता क्योंकि यौनानंद की क्षति जीवन के लिए प्रत्यक्ष रूप से ख़तरनाक नहीं होती है। औरत और मर्द, दोनों के लिए ही यौन सुख एक बुनियादी और कुदरती तजुर्बा है। एक औरत को यौन आनंद से वंचित कर देना उसे उसके मानवाधिकारों से वंचित कर देने के बराबर है।

एफ़जीएम ने केवल अपने शरीर और शारीरिक सुख पर औरत के अधिकारों का हनन करता है बल्कि इससे औरत के स्वास्थ्य के लिए भी गंभीर परिणाम पैदा होते हैं। अंगच्छेद के फ़ौरन बाद भारी रक्तस्राव, सदमा, घावों के दर्द भरे निशान, लाल फूले हुए निशान, भगोष्ठों का चिपक जाना, उनमें गांठें बनना, संक्रमण, पेशाब रोकने और करने में कठिनाई तथा टेटनस जैसे परिणाम पैदा हो सकते हैं। दूसरी ओर, लंबे समय में गुर्दे की पथरी, बांझपन, यौन विरक्ति तथा प्रसव संबंधी समस्याएं सामने आती हैं। मनोवैज्ञानिक स्तर पर एफ़जीएम के अनुभव से गुज़रने वाली औरतें बेचैनी, दहशत, अपमान और विश्वासघात जैसी भावनाओं से लंबे समय तक जूझती रहती हैं।

महिलाओं के लिए एफ़जीएम के विनाशकारी प्रभावों के बावजूद मानवाधिकारों के एजेंडा में इसे अब जाकर ही जगह मिलनी शुरू हुई है। एफ़जीएम के नाम पर हिंसा करने वाले लोग राज्य के प्रतिनिधि नहीं बल्कि आम लोग होते हैं इसलिए एफ़जीएम लंबे समय तक मानवाधिकार हनन का सवाल ही नहीं था। चूंकि यह प्रथा समुदायों की सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं में गहरे तौर पर बैठी हुई है इसलिए लोगों को डर था कि बाहरी दखलंदाज़ी को 'सांस्कृतिक साम्राज्यवाद' का नाम भी दिया जा सकता है। मानवाधिकारों के दृष्टिकोण से एफ़जीएम महिलाओं के ख़िलाफ़ होने वाली हिंसा का ही एक रूप है जिसका मकसद औरतों की स्वतंत्रता और यौनिकता नियंत्रण है। बहुत सारे स्थानीय व अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने इस प्रथा के दस्तावेज़ीकरण, शोध, जागरूकता अभियानों, जनमत निर्माण, लॉबिंग के ज़रिए एफ़जीएम विरोधी अभियान में योगदान दिया है। कोशिश रही है कि औरतों को इस प्रथा को छोड़ देने के लिए प्रेरित व प्रोत्साहित किया जाए।

दुनिया के कम से कम अट्ठारह देशों में एफ़जीएम पर पाबंदी के लिए कानूनी प्रावधान किए जा चुके हैं। अफ्रीका के नौ देशों जिनमें मिश्र व घाना शामिल हैं में इसे अपराध घोषित किया जा चुका है। ब्रिटेन, कनाडा, फ्रांस, स्वीडन, स्विट्ज़रलैंड, ऑस्ट्रेलिया और अमेरिका में भी इसके ख़िलाफ़ कानून पारित किया गया है।

और आख़िर में एफ़जीएम विरोधी कार्यवाई जब तक पूरी तरह आगे नहीं बढ़ सकती जब तक इसे दुनिया भर में औरतों के सामने पेश आ रही नाइंसाफ़ियों को समाप्त करने की कोशिशों के सन्दर्भ में नहीं देखा जाएगा। अगर औरतों को समाज का समान सदस्य माना जाता है तो यह समझना भी ज़रूरी है कि उनकी शारीरिक, मनोवैज्ञानिक या यौन स्वायत्तता को चोट पहुंचाना उनके मानव अधिकारों का हनन है।

अनुवादः योगेन्द्र मिश्रा

स्रोतः नेटवर्किंग फॉर राइट्स, कृति टीम

संघर्ष के दौर में औरतों के अधिकार

जुही जैन

पितृसत्तात्मक समाज में औरतों के मानव अधिकारों का हनन तथा समाज में उनका दोयम दर्जा औरतों पर होने वाली हिंसा को एक वैधता प्रदान करता है। वैसे तो औरतें हर समय हिंसा झेलती हैं पर जंगों, दंगों, आपातकालीन हालात व संघर्ष के माहौल में औरतों पर हिंसा का एक और अधिक भयावह रूप नज़र आता है, जिसे औरतें अपने शरीर व मानस पर झेलती हैं। लाखों-हज़ारों की संख्या में औरतों यौन हिंसा, उत्पीड़न, यंत्रणा व बलात्कार का सामना करती हैं।

हिंसा का यह रूप विश्वव्यापी है। उदाहरण के लिए कांगों के दक्षिण किनु क्षेत्र में सन् 2007 के शुरूआती छः महीनों में यौन यंत्रणा के 4500 केस दर्ज किए गये थे जो जंग के दौरान हिंसा का भीषण रूप दर्शाते हैं। इसमें सामूहिक बलात्कार, स्तनों को काटना, यौन-दासता, योनि में बन्दूक की नाल, लकड़ी या अन्य बाहरी चीज़ों को घुसेड़ना तथा एचआईवी एड्स संक्रमण का ज़बर्दस्ती संचारण शामिल हैं। कोलम्बिया में हर सौ में से 43 औरतों ने युद्ध के दौरान किसी न किसी रूप में यौन हिंसा झेली हैं। भारत में गुजरात नरसंहार का सच हमसे छुपा नहीं है। पुलिस व कानून की बेरूखी और हताशा हिंसा की इस संस्कृति को पुख्ता करती है जिनमें औरतों व बच्चियों के प्रजनन व यौनिक स्वास्थ्य व अधिकारों का हनन होता है।

युद्ध और संघर्ष के समय जेंडर आधारित हिंसा का होना एक अपरिहार्य और अनिवार्य नतीजा समझा जाता है। प्रतिद्वंदी सेना या कौम के लिए औरतों पर यह हिंसा दुश्मन को 'सज़ा' देने और उसके सम्मान को चकनाचूर करने का सबसे कारगार हथियार है। साथ ही यह उनकी श्रेष्ठता, बल व मर्दानगी साबित करने का ज़रिया भी है। नतीजतन औरतें यौनिक व प्रजनन संबंधी तकलीफ़ों के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक व मनोचिकित्सीय जटिलताओं का भी सामना करने को बाध्य हो जाती हैं।

जंग व दंगों के दौरान रोज़मर्रा की सेवा सुविधाओं का ठप होना एक आम बात है। चोटें, घाव, संक्रमण, साफ-सफाई का अभाव, पोषक भोजन व स्वच्छ पानी की कमी भी देखने को मिलती है। स्वास्थ्य सुविधाओं और चिकित्सा तक पहुंच पर भी संघर्ष का गहरा असर पड़ता है। स्वास्थ्य केंद्र अस्पताल, क्लीनिक और ज़रूरी दवाइयों तक पहुंच असंभव हो जाती है क्योंकि युद्ध के माहौल में लूटपाट, तोड़-फोड़ और नुक्सान बड़े पैमाने पर होता है।

युद्ध का एक अहम् प्रभाव जो सीधे औरतों के स्वास्थ्य पर पड़ता है वह है मातृत्व मृत्युदर व विकृतियों में बढ़ोतरी, क्योंकि औरतें सही समय पर अस्पताल तक नहीं पहुंच पातीं। औरतों के लिए सुरक्षित प्रसव, आपातकालीन प्रसूति सेवा, गर्भनिरोधक, परिवार नियोजन व गर्भपात सेवाओं को सही समय पर मिलना उनके स्वास्थ्य व जीवन के लिए महत्वपूर्ण होता है।

यौन हिंसा का औरतों के स्वास्थ्य के ऊपर प्रभाव काफी व्यापक होता है। इनमें अनचाहा गर्भ, एचआईवी व यौन संक्रमण प्रमुख हैं। सुरक्षित सेवा के अभाव में बलात्कार या यौन हिंसा से ठहरे गर्भ और संक्रमण से निपटने के लिए कोई भी तरीके इस्तेमाल करने से परहेज नहीं किया जाता। संयुक्त राष्ट्र के आंकड़े दर्शाते हैं कि शरणार्थी कैम्प में करीबन पचास प्रतिशत मौतें असुरक्षित गर्भपात के कारण होती हैं। काफी औरतें असुरक्षित गर्भपात के कारण, खून की कमी, संक्रमण, कमज़ोरी और अनुर्वरता का शिकार होती हैं।

संघर्ष के समय में एचआईवी, एडस संक्रमण का फैलाव भी एक गंभीर स्वास्थ्य समस्या है जिसका सामना लड़कियों व औरतों को करना पड़ता है। पुलिस, सेना, आतंकवादी समूह, राहत कर्मी व आम नागरिकों के हाथों बड़े पैमाने पर असुरक्षित यौन हिंसा की घटनाएं सामने आती हैं जिनमें एचआईवी संक्रमण की संभावना अधिक होती है।

यौन हिंसा शरीर के साथ-साथ औरतों के आत्म सम्मान पर भी चोट करती है। राहत कैम्पों में रहना, घर-परिवार से बिछुड़ना और उस पर हमेशा यौन हिंसा के डर के साए में जीना औरतों के लिए त्रासदीपूर्ण होता है। दोस्त मददगार और दुश्मनों के बीच फ़र्क़ करना मुश्किल हो जाता है। अक्सर औरतें ऐसी स्थिति में अपने होशो-हवास और मानसिक संतुलन खो बैठती हैं। वे डर, सदमे, शरीर दर्द, डिप्रेशन और आत्महत्या जैसी शारीरिक व मानसिक यातनाओं से जूझती हैं। इन हालातों में अगर उनका परिवार-समुदाय उन्हें सहारा दे तो ठीक। पर अक्सर यौन हिंसा की शिकार औरतों को समाज नकार देता है जिससे उनकी समस्याएं बढ़ती हैं तथा वे खुद को कसूरवार ठहराने लगती हैं। समुदाय व परिवार औरतों को न सिर्फ़ अपनाने से इंकार करते हैं बल्कि काफी दफ़ा उन पर और अधिक हिंसा की जाती है। इनमें कारो-कारी (ऑनर किलिंग), हत्या, कोसना, भूखा रखना आदि शामिल हैं।

यह भी एक कड़वी सच्चाई है कि युद्ध के दौरान औरतों पर दोहरी मार पड़ती है। यौन हिंसा के साथ-साथ घर-परिवार को चलाने की ज़िम्मेदारी भी वे उठाती हैं। गरीबी, व अन्य आजीविका के विकल्पों के अभाव में वे वेश्यावृति जैसे पेशे अपनाने को बाध्य हो जाती हैं। काफी औरतों को यौन दासता के लिए भी अगवा किया जाता है। इसके अलावा यौन व्यापार के लिए भी औरतों व बच्चियों की खरीद-फरोख्त होती है। इन सभी के चलते गंभीर यौन संक्रमण, एचआईवी, एडस, अनचाहे गर्भ जैसी स्वास्थ्य को नुक्सान पहुंचाने वाली तकलीफ़ें आम होती हैं।

कहने का तात्पर्य यही है कि जंग, दंगों और आपातकालीन परिस्थितियों में औरतों के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता है। हमारे देश व हमारे जैसे कई अन्य देशों में स्वास्थ्य सेवाओं का स्तर वैसे भी निम्न दर्जे का है। यह सेवाएं इस संघर्ष के माहौल में और संकुचित व लगभग नगण्य हो जाती हैं।

ऐसी परिस्थिति में आवश्यक हो जाता है कि औरतों के यौनिक प्रजनन अधिकारों के लिए विशेष प्रावधान बनाए जाएं व उनके कार्यावयन पर खास तवज्जो दी जाए। इनमें सामाजिक, कानूनी, स्वास्थ्य व सुरक्षा सभी पहलुओं पर गौर किया जाना चाहिए। कुछ महत्वपूर्ण सेवाएं जिन पर सरकार ध्यान दे सकती है वह हैं:

- यौन हिंसा का शिकार औरतों के लिए सुरक्षित व कानूनी गर्भपात सेवा।
- गर्भपात, गर्भ निरोध, यौन संक्रमण पर जानकारी व तत्कालीन इलाज।
- एचआईवी, एडस परीक्षण व संक्रमण की तुरन्त जांच व इलाज सुविधा।
- रैनबसेरा, सदमा कांउसलिग, कानूनी सलाह सेवाएं।
- शरणार्थियों व प्रभावित समुदायों के लिए आजीविका व रहने की खास सुविधा जिसे अन्य समुदायों, धार्मिक समूहों के साथ मिलकर चलाया जाए। इससे खोया विश्वास व आपसी सदभाव को बढ़ावा दिया जा सकेगा।
- पुलिस, सेना, वकील, न्यायधीश व अफ़सर आला की जेंडर संवेदनशीलता प्रशिक्षण।
- यौन हिंसा व बलात्कार के दोषियों को कानून के ज़रिए सज़ा दिलवाने की (सीमित समय के अंदर) विशेष व्यवस्था।
- सभी उच्च स्तरों पर औरतों की विशेष भागीदारी खासकर राहत, आपातकालीन स्वास्थ्य व अमन सेवाओं में।

चित्र: आरती खरे, कृति टीम के लिए

बलात्कार
चाहे
अमन के समय हो
या
जंग के माहौल में।
चाहे
सरकारी नुमांइदे,
सशस्त्र विद्रोही
या
आम आदमी
इसके
गुनहगार हों।
इसमें
सत्ता का निंदात्मक
दुरुपयोग
और
मानव अधिकार हनन
शामिल होता है।

साभार: नेटवर्किंग फ़ॉर राइट्स, कृति टीम

सामाजिक ढांचों के बीच महिला स्वास्थ्य

सुनीता ठाकुर

मेरे सामने जागोरी में आए पिछले तीन सालों के हिंसा के मामलों के आंकड़े हैं। अप्रैल 2004 से मार्च 2008 तक आए कुल 495 मामलों में से 60 प्रतिशत से ज़्यादा घरेलू हिंसा के थे। लेकिन एक भी मामला ऐसा नहीं था जिसमें महिलाएं अपने स्वास्थ्य की दिक़्क़तों के बारे में किसी भी प्रकार की सहायता के लिए आई हों। महिला हिंसा के खिलाफ़ अपने काम में हमने कुछ खास बातें नोट की हैंः

तमाम स्वास्थ्य योजनाओं के बावजूद महिलाओं का स्वास्थ्य परिवार व समाज में कोई खास अहमियत नहीं रखता। महिला स्वास्थ्य का अर्थ हमारे यहां सिर्फ़ मां और बच्चे की देखभाल है। गर्भवती या दूध पिलाने वाली महिलाओं का स्वास्थ्य ही सरकार, समाज और परिवार की मूल चिंता का विषय होता है। महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य, यौनिक स्वास्थ्य, के साथ साथ उनके मानसिक व भावनात्मक पक्षों पर कोई गौर नहीं किया जाता। यों तो महिलाएं खुद भी अपने स्वास्थ्य के प्रति सचेत नहीं होतीं। पर यह कोई असाधारण बात नहीं है। जिस समाज में हमारा पालन पोषण होता है उसमें हमारी परवरिश के तौर तरीके, संस्कार, सोच, सबका असर हमारे स्वास्थ्य पर पड़ता है। इसलिए अगर हम महिला स्वास्थ्य की बात करना चाहते हैं तो पहले हमें अपने समाज और जीवन के उन पक्षों पर नज़र दौड़ानी होगी जो मूल कारक की भूमिका अदा करते हैं।

परिवार- हमारे परिवारों में लड़कियों और महिलाओं का पालन पोषण जिस तरीके से होता है उसमें खान-पान से लेकर, इलाज की सुविधाओं तक पहला हक़ लड़कों या पुरुषों को दिया जाता है। परिवार में लड़कियों के लिए संयम और सेवा के नाम पर जो संस्कार परोसे जाते हैं वे उन्हें ताउम्र एक अच्छी गृहिणी बनकर सबसे अंत में और सबसे थोड़ा खाकर संतोष करना सिखाते हैं। लड़कों को पूरी हिफ़ाजत से सहेजने और लड़कियों को कुदरत के हवाले छोड़ देने की मानसिकता उनमें किन

कमज़ोरियों को जन्म देती है इसकी तरफ़ कोई गौर नहीं किया जाता।

बचपन से ही परिवार में लड़की के रूप में किसी भी महिला के खराब स्वास्थ्य की नींव पड़ जाती है। मगर लड़की को 'पराया' और 'गैर' मानने वाला समाज भी यह नहीं सोचता कि भविष्य की नस्लों के जन्म में औरत की अहम भूमिका है। और इसी के नाते ही सही उसके अच्छे स्वास्थ्य के लिए प्रयत्न किए जाने चाहिए।

धर्म- महिलाओं के स्वास्थ्य पर बुरा असर डालने में हमारे धार्मिक आग्रह भी कम भूमिका नहीं निभाते। क्या हम कभी सोचते हैं कि धर्म के नाम पर स्त्री के लिए तमाम व्रत, उपवास रखने की शिक्षा का सीधा असर उनकी सेहत पर पड़ता है। परिवार ओर पति के साथ जुड़े भाग्यवादी सोच के रहते महिलाएं खुशी-खुशी हफ़्ते में दो दिन, नौ-नौ दिन और एक-एक माह तक का व्रत/रोजा रख लेती हैं। धर्म हमारी नसों में खून की तरह इस तरह दौड़ता है कि हम उसके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दूरगामी प्रभावों को भी नज़रअंदाज़ करते रहते हैं। देर सवेर आने वाले पति की बाट जोहती, दिन भर की थकान और भूख को ताक पर रखकर पतिव्रत का पालन करती औरतें यह भी नहीं सोचतीं कि बिलावक्त भोजन करने या न करने के उसकी सेहत खराब हो रही है। फिर पतिहीन, गैर शादी-शुदा और एकल महिलाओं के लिए तो और भी कठोर कायदे कानून हैं। मगर क्या हमने कभी सोचा है कि आखिर स्त्री और पुरुष के लिए ये दोहरे मानदंड क्यों हैं जबकि दोनों को ही ताकत और स्वास्थ्य की ज़रूरत होती है?

काम- महिलाओं के स्वास्थ्य का उनके काम से बहुत गहरा संबंध होता हैं। माना जाता है कि महिलाएं शारीरिक रूप से पुरुषों से कमज़ोर होती हैं- इसलिए उन्हें घरेलू, कम ताकत वाले भीतर के काम सौंपे जाते हैं। मगर इस सोच का तर्क मुझे आज तक समझ नहीं आया। मैं जब नौ माह की गर्भवती औरत को सिर पर बोझा उठाए, ईंटों का टप्पर ढोए, भारी सामान उठाते, रेड़ी या ठेला ठेलते हुए देखती हूं तो सोचती हूं कि वह कहां से कमज़ोर है।

महिलाओं पर काम के बोझ को समझने के लिए हमें उनकी दैनिक दिनचर्या और आराम के घंटों को समझना होगा। मैंने इस संदर्भ में दस महिलाओं से बात की। दस में से आठ महिलाओं का कहना था कि दिन में बमुश्किल उन्हें आराम का एक घंटा मिलता है। दस में छः महिलाएं ट्यूशन पढ़ाने, नौकरी या फिर घर बैठे पीस बनाने का काम करती हैं। घरेलू काम में परिवार की पूरी ज़िम्मेदारियों का पालन करते हुए अपने लिए समय निकाल पाना भी संभव नहीं होता। महिलाओं पर काम के बोझ के कारण कमर में दर्द, थकान, बुझापन, हताशा, चिड़चिड़ापन, नींद न आना, खून की कमी जैसी दिक़्क़तें आम पाई जाती हैं। जिनके बारे में गौर करने की ज़रूरत और समय दोनों ही न तो वे निकाल पाती हैं न ही परिवार का ध्यान उस ओर जाता है।

परिवार की ज़िम्मेदारियों और ज़रूरतों के बीच महिला का स्वास्थ्य सबसे अंतिम कड़ी में जुड़ा होता है। उस ओर ध्यान तभी जाता है जब घर की व्यवस्था डगमगाती है। दूसरे शब्दों में कहें तो जब काम करने वाला कोई और नहीं रहता। दस में से नौ महिलाओं ने माना कि बीमारहाल होने पर भी उन्हें पूरा आराम और देखभाल नहीं मिल पाती। तुरंत दवा खाकर उन्हें खड़ा होना होता है। इससे वे पूरी तरह ठीक नहीं हो पातीं। परिवार में बार-बार बीमार पड़ने पर शिकायत और ताने उनकी मानसिक और भावनात्मक दिक़्क़तों को और बढ़ाते हैं।

महिलाओं से उनके यौनिक जीवन के बारे में एक अंतरंग सवाल करने पर दस में से दस महिलाओं ने कहा कि बीमार होने के बावजूद उन्हें साथी की यौनिक इच्छा को पूरा करना पड़ता है। यानी स्त्री की बीमारी और उसके तथाकथित गृहस्थ-धर्म में कोई समझौता नहीं किया जा सकता। ये वो बातें हैं जो महिलाओं के रोज़मर्रा के जीवन का हिस्सा हैं। कहने की ज़रूरत नहीं कि इन हालात में रह रही महिलाओं के स्वास्थ्य में शादी के बाद लगातार गिरावट आती है। चिंता, काम के लगातार बढ़ते बोझ, आराम व खुराक की कमी और तनावपूर्ण जीवन के चलते वे लगातार शारीरिक और मानसिक बीमारियों से ग्रस्त रहती हैं।

शादी से पूर्व भी लड़कियों पर आकर्षक बने रहने का दबाव होता है। पतली-दुबली और आकर्षक काया के मोह में वे स्वयं अपने स्वास्थ्य से समझौते करती हैं। एक कुंवारी लड़की को यौनिक बीमारी या संक्रमण होने पर वह एक खास चर्चा का विषय बन जाती है।

मीडिया- एक एक्टिव और स्मार्ट मां की छवि को बढ़ाता मीडिया स्त्रियों पर अनजाने ही एक और बोझ लादता रहा है। परिवार की कसौटियों पर खरा उतरने के साथ-साथ अब बच्चों के लिए 'आर्कषक मां' बनना भी ज़रूरी होता जा रहा है। ऐसा न होने पर असफलता का मानसिक आघात भी स्त्री को ही झेलना पड़ता है। इस एक्टिव मदर को हर वो प्रोडक्ट और साधन अपनाना होता है जिसका मीडिया में प्रचार है। अगर वह उनकी ओर नहीं देखती, उन पर चर्चा नहीं करती, उन्हें इस्तेमाल नहीं करती तो वह अपने संगी-साथियों व बच्चों की निगाह में एक्टिव औरत और मां नहीं है। मीडिया की इस संस्कृति का सीधा असर महिलाओं के शारीरिक और भावनात्मक स्वास्थ्य पर पड़ता है।

हिंसा- परिवार में लड़कियों तथा महिलाओं के साथ होने वाले इस तरह के दुराव और भेदभावपूर्ण व्यवहारों को हम भी हिंसा मानते हैं। इसमें मानसिक, भावनात्मक चोट पहुंचाने, आर्थिक शोषण, यौनिक अत्याचार के साथ साथ मारपीट भी शामिल है। महिलाओं पर होने वाली किसी भी प्रकार की हिंसा का सीधा असर उनके मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ता है जिसके परिणाम हारमोनल डिसऑर्डर, डिप्रेशन, मानसिक आघात और शारीरिक बीमारियों के रूप में देखने को मिलते हैं। यह समझना बहुत ज़रूरी है हिंसा और महिला स्वास्थ्य का रिश्ता दोहरे स्तर पर होता है। हिंसा का असर स्वास्थ्य पर पड़ता है और बीमार होने पर उसका इलाज न कराना भी हिंसा का एक रूप है।... और इस गुनाह में परिवार, समाज और सरकारी नीतियां सभी गुनहगार हैं जो खतरनाक गर्भनिरोधकों के प्रचार, खतरनाक दवाओं के प्रयोग, डॉक्टरों के असंवेदनशील व्यवहार, हिंसात्मक मामलों में घायल महिलाओं के इलाज के प्रति दोहरे और नकारात्मक रवैये में देखने को मिलता है।

कानून- ऊपरी तौर पर कानून और महिला स्वास्थ्य के बीच कोई बहुत बड़ा रिश्ता नज़र नहीं आता। परन्तु जिस तरह की सरकारी नीतियां, लचर कानून व्यवस्था, खतरनाक गर्भनिरोधकों, गर्भपात व लिंग जांच के विरुद्ध बने कानूनों की खुलकर धज्जियां उड़ाई जाती हैं वे क्या सीधे तौर पर महिलाओं को प्रभावित नहीं करतीं? हाल ही में मुंबई हाई कोर्ट का एक फैसला चर्चा का विषय बना है जिसने सालों पूर्व बने गर्भपात कानून पर फिर सवाल खड़े किए हैं। महिला यदि किसी भी कारण से बच्चे को जन्म न देना चाहे तो क्या यह हक़ उसे नहीं होना चाहिए। क्या महिला सिर्फ़ बच्चे पैदा करने की मशीन है जिसे चाहे बीमार ही सही, पर बच्चे को जन्म तो देना ही होगा। महिला स्वास्थ्य को लेकर कानून की यह संकुचित सोच हमारी समझ से परे है।

इन सभी संदर्भों पर गौर करने के बाद हम इस बात से कतई इंकार नहीं कर सकते कि एक बीमार स्त्री के लिए समाज में कोई जगह नहीं रहती। वह परिवार या स्वास्थ्य व्यवस्था में कभी इलाज की कमी तो कभी इलाज न मिल पाने के कारण अपनी नियति जीती रहती हैं। मगर यह समाज के एक ज़िम्मेदार नागरिक के रूप में हमें समझने की ज़रूरत है कि क्या आधी बीमार आबादी के साथ हम एक स्वस्थ समाज की नींव रख सकते हैं? क्या बीमार और अस्वस्थ स्त्री परिवार के लिए चिंता का विषय नहीं होनी चाहिए? क्या स्त्री का स्वास्थ्य परिवार समाज और देश के स्वास्थ्य से हटकर महत्वहीन हो सकता है?

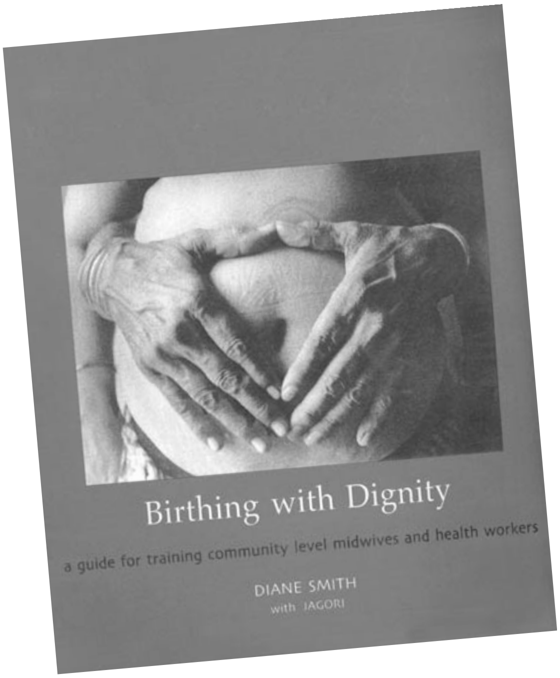

बर्थिंग विद डिगनिटी

ए गाइड फ़ॉर ट्रेनिंग कम्यूनिटी लेवल मिडवाइफ़ज़ एंड हैल्थ वर्कर्स

लेखन : डायन स्मिथ, जागोरी के साथ
प्रकाशक : जागोरी
पृष्ठ : 265
भाषा : अंग्रेज़ी
मूल्य : 225/-

एक मिडवाइफ़ शिक्षिका ने एक बार बताया था *"आज के दौर में दुनिया की सबसे प्राचीन सार-संभाल परम्परा को जिलाए रखने के लिए एक मिडवाइफ़ को रोगहर, फिजीशियन, वकील, राजनेता, कलाकार, कॉमिडियन, दोस्त, नट, नर्स, डॉक्टर, यात्री, रफूगर, श्रमिक, मेकेनिक, स्वधर्मत्यागी व घुमक्कड़ होना चाहिए।"*

इसी गुरुमंत्र को औरतों के जीवन के एक सशक्त और प्राकृतिक अनुभव का आधार मानकर इस मैनुअल की रचना की गई है। *"बर्थिंग विद डिगनिटी: ए गाइड फ़ॉर ट्रेनिंग कम्यूनिटी लेवल मिडवाइफ़ज़ एंड हैल्थ वर्कर्स"* नाम का यह प्रशिक्षण मैनुअल, औरतों की प्रसव प्रक्रिया तथा दाई-मिडवाइफ़ जैसी स्वास्थ्य और देखभाल देने वाली महिलाओं को सुरक्षा, सशक्तता, ऊर्जा और सम्मान दिलाने के उद्देश्य से तैयार किया गया है।

इस प्रशिक्षण मैनुअल को डायन स्मिथ, जो कनाडा की एक कुशल मिडवाइफ़ हैं, ने जागोरी समूह के साथ मिलकर लिखा है। यह पुस्तक खासकर व्यवसायिक मिडवाइफ़, नर्सों एएनएम व ग्रामीण स्वास्थ्य कार्यकत्ताओं के लिए उपयोगी है। इसे दाइयों व अन्य स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं व प्रसव कराने में सहायक औरतों के प्रशिक्षण में भी इस्तेमाल किया जा सकता है। साथ ही यह नारीवादी संगठनों, कार्यकत्ताओं व महिला स्वास्थ्य से जुड़े तमाम लोगों के लिए भी उपयुक्त है।

इस प्रशिक्षण मैनुअल को रचने में एक विशेष प्रक्रिया अपनाई गई है। लेखिका ने ग्रामीण स्वास्थ्य कार्यकत्ताओं, दाइयों और जागोरी के सदस्यों के साथ एक तीन दिन की कार्यशाला आयोजित की। डायन स्मिथ के अपने शब्दों में "मैंने महसूस किया कि यहां पर मौजूद औरतों की भी ख्वाहिश है कि वे एक आरामदायक व सुकून के माहौल में अपने बच्चे को जन्म दे सकें। साथ ही प्रसव में उनके पारम्परिक सांस्कृतिक कौशल और ज्ञान व बच्चा जनने की शक्ति को भी सम्मान और गरिमा प्रदान की जाए। इसके अलावा तीन दिन में समूह को यह भी स्पष्ट हो गया कि चिकित्सा शास्त्र और व्यवसायिक स्वास्थ्य प्रणाली, दाई के पारम्परिक ज्ञान व औरतों की जन्म देने की क्षमता को कमतर मानती है। ऐसे दौर में एक जेंडर संवदेनशील परिपेक्ष को सहेज कर रखना और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।"

इस कार्यशाला के पश्चात दाइयों के लिए एक महिला-केंद्रित प्रशिक्षण कोर्स तैयार किया गया। इस कोर्स व दाई प्रशिक्षणों से पारम्परिक प्रसव व्यवहारों तथा रिवाजों व ग्रामीण महिलाओं की शारीरिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक समस्याओं के बारे में समझ बनाने में मदद मिली।

लेखिका बताती हैं, “उत्तर भारत की कई दाइयों के साथ पिछले कुछ वर्षो में मिलने के बाद मैंने दाई व मिडवाईफ़ के प्रशिक्षण के कोर्स की रचना की है। इस रिहाइशी कोर्स में जागोरी टीम के महिला समाख्या के साथ नेटवर्किंग के अनुभव, दाइयों, सहभागियों व मेरे मिडवाईफ़ और प्रशिक्षक होने के साझे अनुभवों ने अहम भूमिका अदा की है। यह कार्यक्रम सिद्धातों, कौशल, इलाज, दवा तथा रोग हरने की कला का मिश्रण है। इसमें इस काम से जुड़ी सभी औरतों की ताकत, कमज़ोरियों, रुकावटें, सफलताएं, असफ़लताएं व कमियों से उपजे एहसासों की सीख है।”

दाई प्रशिक्षण का कारगरता फॉलो-अप मीटिंगों द्वारा जांची गई हैं। प्रशिक्षण से गुज़रने वाली दाइयों ने बताया कि इस प्रशिक्षण से वह जच्चा-बच्चा की देखभाल और बेहतर तरीकों से कर पाती हैं। स्वास्थ्य सेवा प्रदान करने वालो व्यवसायिकों के साथ विचार-विमर्श, शरीर और उनकी बनावट, अंगों के काम करने की प्रक्रियाओं के बारे में जानकारी हासिल करने से उनमें और अधिक आत्म-विश्वास व अपने हुनर के प्रति गर्व में बढ़ोत्तरी हुई है।

इस मैनुअल में दाई प्रशिक्षकों के लिए एक सम्पूर्ण ग्यारह दिन के रिहाईशी प्रशिक्षण की रूपरेखा विस्तार से दी गई है। इस प्रशिक्षण से गुज़रकर सहभागी दाइयों को प्रशिक्षित करने के रचनात्मक तरीके ईजाद कर पाएगें। यह मैनुअल उन्हें दाई प्रशिक्षण में प्रोत्साहन देकर उनकी समझ तराशने में भी अहम भूमिका निभाएगा।

मैनुअल को ग्यारह अंशों में विभाजित किया गया है जिनमें जेंडर नज़रिया, महिला अधिकार, शारीरिक चेतना, शरीर की समझ, गर्भनिरोध, गर्भावस्था, जचगी, शिशु व मां की देखभाल आदि विषयों पर जानकारी संग्रहित है।

इस पुस्तक को प्रशिक्षण के एक कुशल पैमाने की तरह देखा जा सकता है जिसमें स्वास्थ्य, पारम्परिक कौशल, मिडवाइफ़ हुनर, रिवाजों व आज के दौर के नए व्यवहार का विस्तृत ब्योरा है।

हमें उम्मीद है कि इस मैनुअल के इस्तेमाल से हम औरतें सही मायने में सशक्तता का अनुभव करेंगी। हमारे लिए सशक्त होने का मतलब है अपनी बात कहने की हिम्मत, मान-सम्मान का व्यवहार तथा ऐसे हालातों में हम पर और हमारे कौशल पर विश्वास जहां ज़िम्मेदारी की आवश्यकता हो।

-जुही जैन

प्रतियां मंगवाने के लिए संपर्क करें:
महाबीर सिंह, जागोरी
दूरभाषः 011-26691219/20 email: distribution@jagori.org

मन्दिर

स्नेहमयी चौधरी

मूर्ति पत्थर की
क्या सचमुच पत्थर की?
कुछ भी कहो
बिना बोले सुनती रहे
सब कुछ,
नहीं।

वह केवल धैर्य बनाये
रखती है कि
कब तुम अंदर की
सच्चाई पहचानोगे?

कब तुम झूठ बोल-बोलकर
थक जाओगे
मौन के आगे?

मूर्ति पत्थर की
इसी प्रतीक्षा में रहती है
कि तुम अन्तरात्मा को चीन्हों,
मंदिर के अंदर एकान्त में—
चीखकर स्वीकारोक्ति
कभी तो करोगे ही।

'फिर मिलेंगे' - जीवन संघर्ष की मिसाल

सुनीता ठाकुर

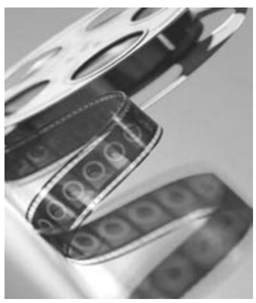

फिर मिलेंगे	:	2004, हिन्दी, कलर
निर्देशक	:	रेवती
फ़िल्मांकन	:	एस. रवि वर्मन
गीत	:	प्रसून जोशी
संगीत	:	शंकर-एहसान-लॉय, बी. राजा, निखिल-विनय

एचआईवी एड्स के विषय में हमारे समाज में बहुत सी धारणाएं और मत फैले हुए हैं जिनके रहते एड्स पीड़ित व्यक्तियों, खासकर महिलाओं के लिए हालात बहुत बदतर बन जाते हैं। अपनी शारीरिक दिक़्कतों और कमज़ोरियों के साथ-साथ सामाजिक भेदभाव से भी उन्हें जूझना पड़ता है। *'फिर मिलेंगे'* इसी श्रेणी की एक संवेदनशील फ़िल्म है।

फ़िल्म की कहानी कुछ इस प्रकार है। नायिका, तमन्ना (शिल्पा शेट्टी) एक विज्ञापन कम्पनी में नौकरी करती है। तमन्ना एक आत्म-विश्वासी और खुद्दार लड़की है। उसके विचार प्रगतिशील हैं और वह ज़िन्दगी में एक सफल मुकाम पर है। कम्पनी में उसके काम की वजह से उसकी बड़ी साख है। वर्षों बाद अपने कॉलेज के एक कार्यक्रम में वह रोहित (सलमान खान) से दोबारा मिलती है। पुरानी यादें ताज़ा होती हैं और रोहित और तमन्ना कुछ नज़दीकी पल साथ गुज़ारते हैं। रोहित वापस विदेश चला जाता है और तमन्ना अपनी नौकरी पर। तमन्ना की एक छोटी बहन है, तान्या जो एक दिन दुर्घटना का शिकार हो जाती है। जब तमन्ना अपनी बहन की जान बचाने के लिए अपना खून देना चाहती है तो उसे पता चलता है कि उसे एचआईवी संक्रमण है। डर, अविश्वास और सदमे से गुज़रती तमन्ना रोहित को ढूंढने की कोशिश करती है। पर रोहित से सम्पर्क नहीं हो पाता। तमन्ना की बीमारी के बारे में खबर लगते ही आसपास के लोग उससे कतराने लगते हैं। उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है। गुस्से, अपमान पर हिम्मत से भरी तमन्ना एक वकील, तरुण (अभिषेक बच्चन) की मदद से केस जीतती है और अपनी नौकरी दोबारा हासिल करती है।

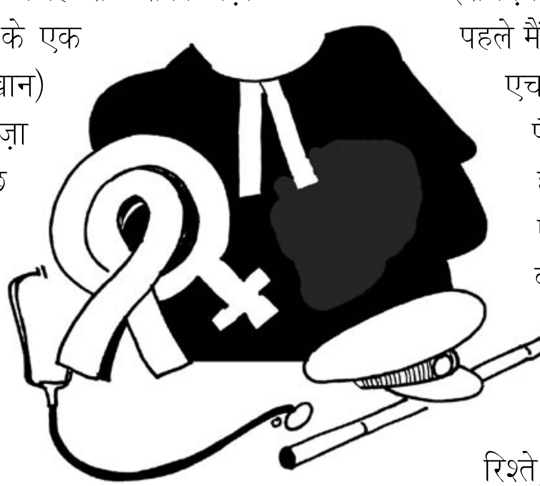

इस फ़िल्म के बारे में और आगे बात करने के पहले मैं यह बताना चाहूंगी कि *फिर मिलेंगे* से एचआईवी/एड्स के बारे में जागरूकता फैलाने की उम्मीद करना उचित नहीं होगा। यह फ़िल्म एड्स के मुद्दे को एक सीमित दायरे में उठाती है जिसका केन्द्र इस बीमारी से ग्रस्त लोगों की ज़िंदगी है। फ़िल्म हमें यह समझाती है कि एड्स से संक्रमित होने के बाद एक व्यक्ति के तमाम रिश्ते, नौकरी, दोस्तियों के पैमाने बदल

जाते हैं। अकेलेपन, अपमान और सामाजिक बहिष्कार के चलते रोगी अपनी जीने की इच्छा शक्ति खो देता है। यह फ़िल्म एक लड़की के समाज में अपने हक़ों व आत्म-सम्मान को पाने के संघर्ष को बखूबी दर्शाती है।

फ़िल्म में नायिका के साथ होने वाले दुराव और सामाजिक बहिष्कार का संवेदनशील चित्रण किया गया है जिसका सामना करते हुए वह अपनी बीमारी से जूझती है। उसके कुछ दोस्त उसका साथ देते हैं और वह इस लड़ाई को जारी रखती है। फ़िल्म कानूनी तंत्र में व्याप्त पूर्वाग्रहों को भी दर्शाती है। कानूनी जिरह के दौरान उसे बेबुनियाद सवालों का जवाब देना पड़ता है। नायिका की यह कानूनी लड़ाई एचआईवी संक्रमित व्यक्तियों के हक़ों का एक संघर्ष अभियान बन जाती है जो उन्हें बराबरी से जीने और आगे बढ़ने का संवैधानिक अधिकार दोहराती है।

इस फ़िल्म के ज़रिए हम एचआईवी संक्रमित महिलाओं के प्रति समाज के संकुचित रवैये और दुराचरणों को समझ सकते हैं। फ़िल्म में बखूबी दर्शाया गया है कि एक एड्स संक्रमित महिला के चरित्र पर उंगली उठाने से पहले समाज एक बार भी नहीं सोचता। महिला को यदि एचआईवी संक्रमण है तो यह मान लिया जाता है कि वह चरित्रहीन है। उसके किसी पर पुरुष के साथ यौनिक संबंध हैं। भले ही यह बीमारी उसे अपने ही पति से मिली हो।

फ़िल्म के अंत में अदालती फैसले द्वारा नायिका की नौकरी लौटाई जाती है, उसे काम करने का हक़ मिलता है। फ़िल्म का यह सकारात्मक अंत समाज के सामने यह उदाहरण पेश करता है कि जीने की इच्छा हो तो हम किसी भी भयंकर स्थिति का सामना कर सकते है। फ़िल्म के माध्यम से एचआईवी संक्रमण के विषय में छुआछूत, घृणा, डर और अन्य दुर्व्यवहारों की विरोध किया गया है। साथ ही एचआईवी संक्रमण के माध्यमों और परिणामों के बारे में बहुत खुलकर चर्चाएं की गई हैं।

हालांकि फ़िल्म में निर्देशिका ने रिश्तों के दोहरे मानदण्डों की सच्चाई दर्शकों के सामने प्रस्तुत की है, पर साथ ही रिश्तों के बदलते आयामों के माध्यम से एक आशा की किरण भी दिखाई है। उदाहरण के लिए फ़िल्म में नायिका जब पहली बार अपना मुकदमा हार जाती है तो वह एक असंवेदनशील सरकारी वकील, जो एक औरत है, से बड़ी नाउम्मीद होती है। अपने मुकदमे की दोबारा अपील करने के लिए वह एक पुरुष वकील से मिलती है। अपनी पहली मुलाकात से फ़िल्म के अंत तक नायिका और उसके वकील के बीच पनपते एक रिश्ते को बड़ी संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया गया है। बीमारी से डर और घृणा करने वाला यह शख़्स फ़िल्म के दौरान अन्याय और अपनी मुवक्किल के अधिकारों के लिए अपने समूचे वजूद से टक्कर लेने वाले इंसान में तब्दील हो जाता है।

फिर मिलेंगे को खास बनाने वाली एक और बात है फ़िल्म की अभिव्यक्ति का अंदाज़। फ़िल्म के सभी चरित्र एक सहजता के साथ बातचीत करते हैं जिसमें कोई नाटकीयता नहीं है। फ़िल्म में कोमल विचारों का एक ताना बाना है जो त्रासदी की चौखट से गुज़रकर भी नाउम्मीदी को उम्मीद में परिवर्तित करने में कामयाब रहता है।

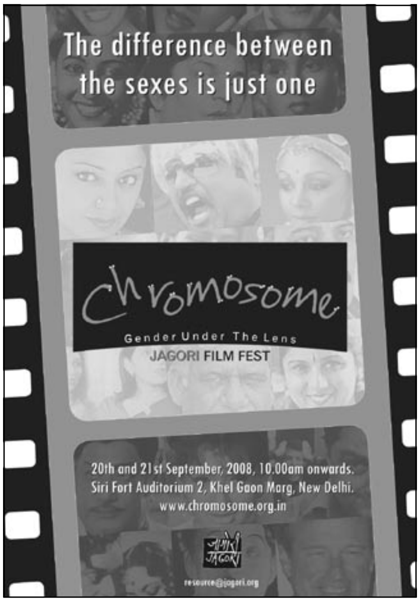

जागोरी फ़िल्मोत्सव : 'क्रोमोज़ोम' - जेंडर पर एक सूक्ष्म नज़र

जागोरी के सृजन में औरतों की रचनात्मक अभिव्यक्ति की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अलग-अलग सम्प्रेषण माध्यमों से अपने जीवन के पहलुओं और अनुभवों को बांटने के प्रयास में जागोरी एक फ़िल्मोत्सव *'क्रोमोज़ोमः जेंडर पर एक सूक्ष्म नज़र'* का आयोजन कर रही है।

फ़िल्मों ने समाज में दोहरी भूमिका निभाई है- पहली, लोगों का मनोरंजन करना और दूसरी, जागरूकता बढ़ाकर मुद्दों पर लोगों की समझ को तराशना। इस फ़िल्मोत्सव के माध्यम से औरतों की रोज़मर्रा की ज़िंदगी में जेंडर की मौजूदगी पर एक सूक्ष्म नज़र डालने की कोशिश की जा रही है।

फ़िल्मों में जेंडर के सकारात्मक व नकारात्मक दोनों पहलुओं को बखूबी दर्शाया जाता है। कुछ ऐसी फ़िल्में हैं जिनमें मौजूदा असमान जेंडर संबंधों को पुनर्स्थापित किया जाता है (मजबूर-कमज़ोर हिरोइन की रक्षा करता हुआ साहसी और जांबाज़ हीरो)। इसके विपरीत कुछ ऐसी भी फ़िल्में देखी जा सकती हैं जिनमें औरतों को सशक्त और जुझारू दिखाया गया है। ये औरतें अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए समाज के नकारात्मक रवैयों को चुनौती देती हैं (हॉकी में वर्ल्ड कप जीतने के लिए हर चुनौती को स्वीकारती औरतों की टीम, जिनका कोच उन्हें प्रेरणा और सहयोग देता है)।

इस फ़िल्मोत्सव का मुख्य विषय है औरत का *'आत्म और पहचान'* जिसकी जेंडर के व्यापक संदर्भ में समीक्षा की जाएगी। कुछ ख़ास मुद्दे जो इस विषय के तहत उठाए जाएंगे वह हैं- शरीर, यौनिकता, खूबसूरती, उम्रदराज़ी, मर्दानगी, स्त्रीत्व, रिश्ते आदि।

कार्यक्रम की रूपरेखा कुछ इस प्रकार हैः

यह दो दिवसीय कार्यक्रम 20-21 सितम्बर को दिल्ली के सीरी फ़ोर्ट ऑडिटोरियम में प्रातः 10 बजे से शुरू होगा। इस फ़िल्मोत्सव में वृत्तचित्र, फ़ीचर फ़िल्म, स्पॉट्स, विज्ञापन प्रस्तुत किए जाएंगे। पहले दिन सुबह का सत्र दो घंटे और दोपहर व शाम का सत्र तीन-तीन घंटे का होगा। दूसरे दिन तीन-तीन घंटों के दो सत्र सुबह व दोपहर में होंगे। दोनों दिनों के सत्र में 'कनैक्टिंग' (जुड़ाव), 'रिफ्लैक्टिंग' (चिंतन) और 'ऐनलाइज़िंग' (विश्लेषण), तीन हिस्से होंगे। हर फ़िल्म के बाद चर्चाएं होंगी जिनमें दर्शक, फ़िल्मकार, कार्यकर्ता सभी शामिल होंगे। दूसरे दिन के अंत में एक 'पैनल गोष्ठी' आयोजित की जाएगी। गोष्ठी में फ़िल्मकार, कलाकार, निर्देशक, लेखक और कार्यकर्ता आमंत्रित किए जाएंगे जो इन मुद्दों पर विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे।

इस विषय पर अधिक जानकारी के लिए जागोरी से सम्पर्क करें।

बालिका भ्रूण हत्या

भारत में एक ओर औरतों व लड़कियों को देवी और लक्ष्मी का दर्जा दिया जाता है, वहीं दूसरी ओर, बेहिचक बड़े पैमाने पर लड़कियों को मारा जा रहा है। बालिका भ्रूण हत्या के मामले दिल दहलाने वाले हैं। इस बेकदरी और हत्या के कारण दक्षिण एशिया में तीन करोड़ से भी ज्य़ादा औरतें 'लापता' हैं। यह तब हो रहा जब औरतें और लड़कियां हर क्षेत्र में आगे रही हैं। वे राष्ट्रपति, डॉक्टर, पुलिस अफ़सर और मुख्यमंत्री बनी हैं। चित्रकार, वैज्ञानिक, खिलाड़ी बनकर अपने देश का नाम रोशन कर रही हैं। आख़िर हमारी लड़कियों में कमी क्या है?

हमें यह जानकर बहुत क्षोभ है कि अधिकांश बालिका भ्रूण हत्या के मामले अहिंसा का दम मरने वाले जैन, हिन्दू और सिख समुदायों से समाने आए हैं। हम समझना चाहते है कि लड़कियों की इस तौहिन और अवहेलना के पीछे क्या कारण हैं? क्यों इस सामाजिक अभिशाप की मुखालफ़त बड़े पैमाने पर नहीं हो रही है?

जिन राज्यों में बालिका भ्रूण हत्या के मामले सबसे अधिक पाए जा रहे हैं उनमें पंजाब, हरियाण, गुजरात और दिल्ली प्रमुख हैं। आंकड़ों पर एक नज़र डालें तो पता चलता है कि पिछले बीस सालों में भारत में दस लाख बालिका भ्रूण हत्याएं की गई हैं। सन् 2001 में भारत में हर हज़ार पुरुषों पर 927 औरते थीं।

हम सभी जानते हैं कि बालिका भ्रूण हत्या के पीछे पितृसत्ता, राज्य व सरकार की महिला-विरोधी नीतियां, बढ़ता उपभोक्तवाद, महिला हिंसा व भौतिक मानसिकता जैसे कारण ज़िम्मेदार हैं। निजी क्लीनिकों और डॉक्टरों द्वारा भ्रूण परीक्षणों ने भी इस अभिशाप को बढ़ावा दिया है। दहेज, शिक्षा का अभाव, आर्थिक बोझ समझने की मानसिकता की भी हमारे देश में लड़कियों की जन हत्या में अहम भूमिका है।

यह बहुत ही चिन्ताजनक और शर्मनाक हालात हैं। हमें ज़रूरत है इस सामाजिक मानसिकता को बदलने की, कि लड़कियां बोझ हैं, उनकी सुरक्षा पुरुषों का दायित्व है। हमें चाहिए कि हम अपने परिवारों, रिश्तेदारों और समुदाय में लड़कियों और महिलाओं को सम्मान और बराबरी से पनपने के मौके दें। लड़के और लड़कियों दोनों के प्रतिभाशाली बनने से ही भविष्य खुशहाल होगा। इसी वादे के साथ आइए आज ही एक नए कल की शुरूआत करें...

2001 की जनगणना के अनुसार हर हज़ार पुरुषों पर औरतों की संख्याः

हरियाणा	820
पंजाब	793
उत्तर प्रदेश	895
गुजरात	878
राजस्थान	909
हिमाचल प्रदेश	897
दिल्ली	886

अभी हाल में दिल्ली की एक स्वयंसेवी संस्था सेंटर फॉर सोशल रिसर्च ने स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय के लिए दिल्ली शहर में एक शोध की है। इस शोध के अनुसार राजधानी में बालिका भ्रूण हत्या के आंकड़े बढ़ते जा रहे हैं। शहर के तीन इलाके नरेला (841) पंजाबी बाग (842) और नजफ़गढ़ (841) में स्त्री-पुरुष अनुपात और अधिक घटा है। एक मेडिकल जर्नल लैन्सट के अनुसार सन् 2007 दिल्ली में हर हज़ार लड़कों पर 762 लड़कियां पाई गई हैं।

औरतों का है यह अधिकार हिंसा-मुक्त हो घर-परिवार

घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण कानून, 2005

महिला आन्दोलन ने पिछले 35 सालों में घरेलू हिंसा पर चुप्पी और उसकी सामाजिक मान्यता को चुनौती दी है। आज परिवार में हिंसा-मुक्त जीवन जीने का कानूनी अधिकार हम महिलाएँ इस **दीवानी (सिविल) कानून** के रूप में हासिल कर पाई हैं।

घरेलू हिंसा क्या है?

इस कानून के अंतर्गत घरेलू हिंसा की परिभाषा के तहत वो हिंसा शामिल है जो **घरेलू रिश्तों** में किसी भी महिला के **स्वास्थ्य, सुरक्षा, हित, जीवन, शारीरिक अंग को चोट या मानसिक रूप** से हानि पहुँचाती हो। दहेज या अन्य सम्पत्ति की मांग भी इस कानून के तहत दण्डनीय है।

घरेलू रिश्ता क्या है?

ऐसे दो व्यक्ति जो साझे घर में रहते हों या किसी भी समय रहे हों। इनके बीच चाहे खून का रिश्ता हो (मां, बहने, बेटी, एकल महिला, पत्नी), विवाह या विवाह जैसे सम्बन्ध हो, दत्तक बच्चा (गोद लिया हुआ) या संयुक्त परिवार के सदस्य के रूप में रहते आये हों या रहे हों।

हिंसा के प्रकार

1) शारीरिक हिंसा
- बल का प्रयोग करना (मारपीट करना, ढकेलना इत्यादि)
- शारीरिक अंग या स्वास्थ्य को हानि पहुँचाना

2) यौनिक हिंसा
- जबरदस्ती शारीरिक संबंध बनाना, चाहे विवाहित हो या अविवाहित
- जबरदस्ती अश्लील फिल्में या तस्वीरें दिखाना
- ऐसा कोई भी यौनिक व्यवहार जो महिला के आत्मसम्मान को ठेस पहुंचाता हो या बेइज्जत करता हो

3) भावनात्मक, मानसिक हिंसा या मौखिक हिंसा
- ताने देना, फब्ती कसना या तिरस्कार करना मुख्य रुप से संतान या खासकर पुत्र न होने के संबंध में उसका अपमान करना व मज़ाक उड़ाना
- महिला के परिचित दोस्त और रिश्तेंदारों को हानि पहुँचाने की धमकी देना

4) आर्थिक हिंसा
- महिला और बच्चों के पालन पोषण के लिए खर्चा न देना
- अगर किराये के घर पर रह रहे हैं तो घर का किराया न देना
- महिला के रोजगार पर रोक लगाना या उसमें रुकावट डालना

घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण कानून, 2005 के तहत महिला इन मुख्य आदेश व राहत प्राप्त कर सकती है

- हिंसा पीड़ित महिला की मजिस्ट्रेट के सामने सुनवाई के बाद मजिस्ट्रेट की ओर से सुरक्षा आदेश जारी होंगे। हिंसाकर्ता पर रोक लगाई जाएगी कि वह कोई हिंसात्मक व्यवहार महिला के साथ न करे, चाहे घर में हो या कार्यस्थल पर हो व किसी भी माध्यम से महिला को सर्म्पक करने की कोशिश न करे।
- शिकायतकर्ता महिला के संयुक्त परिवार में रहने का अधिकार के आदेश पर हिंसाकर्ता को महिला से मिलने या संपर्क के प्रयास पर रोक लगाई जा सकती है। गम्भीर स्थिति में हिंसाकर्ता को सांझे घर से हटने का आदेश भी दे सकते हैं।
- आर्थिक राहत के तहत आजीविका, शारीरिक व मानसिक और संपत्ति में हुई हानियों की भरपाई, दवा का खर्च, व प्रतिमाह के खर्चो के आदेश हो सकते हैं।
- 18 साल से कम उम्र के बच्चों को माँ के साथ सुरक्षित रहने का आदेश मिल सकता है (अगर मां चाहे)। स्थिति के अनुसार मजिस्ट्रेट यह तय करेंगे कि हिंसाकर्ता समय-समय पर बच्चों से मिल सकते हैं या नहीं।

औरतों ने अब यह ठाना है हिंसा-मुक्त जीवन पाना है!

जागोरी / JAGORI

सम्पर्क करें : जागोरी, बी-114, शिवालिक, मालवीय नगर, नई दिल्ली-110017
फोन न.: 26691219, 26691220, Fax : 26691221
E-mail: helpline@jagori.org, Website: www.jagori.org

साभार: ऑवर डायरी 2004, कृति टीम, चित्र: रेखा शंकर